

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-23, 16-31 जुलाई 2019



मासूमों पर कहर बनकर टूटी व्यवस्था की नाकामी!

चमकी बुखार
कठघरे में सरकार।

सर्व सेवा संघ

(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 23, 16-31 जुलाई 2019

अध्यक्ष

महादेव विद्रोही

संपादक

बिमल कुमार

सहसंपादक

प्रेम प्रकाश

09453219994

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
प्रो. सोमनाथ रोडे अरविन्द अंजुम,
रमेश ओझा अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ

राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com

Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310

IFSC Code : UBIN0538353

Union Bank of India

Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय...	2
2. नेल्सन मंडला : अफ्रीका का दूसरा गांधी...	3
3. जनतंत्र की चुनौतियां और मीडिया की...	4
4. साम्प्रदायिकता और संस्कृति...	5
5. सत्ता की प्रकृति...	6
6. एक राष्ट्र एक चुनाव...	7
7. बुंदेलखण्ड : पानी विहीन होती धरती...	9
8. आवरण कथा...	11
9. धारावाहिक : बा...	13
10. गन्ने की मिठास में आंसुओं का स्वाद...	15
11. नोचे जा रहे हैं इतिहास के गौरवशाली...	16
12. गांधी जब खुद लिंच होने से बाल-बाल...	17
13. लोक-विमर्श...	18
14. गतिविधियां एवं समाचार...	19
15. कविताएं...	20

संपादकीय

अहिंसक क्रांति का अगला चरण

आजादी मिलने के बाद, भारतीय समाज का पुनर्गठन एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। इस पुनर्गठन की योजना के केन्द्र में मुख्यतः दो बिन्दु थे। एक सोच, ग्रामीण समाज में विद्यमान अर्ध-सामंती संरचना व मानसिकता को बदलने की थी। इसके लिए आंदोलनों के केन्द्र में भूमि का समान वितरण तथा जाति प्रथा का उन्मूलन मुख्य थे। दूसरे, औद्योगिक विकास का माध्यम सार्वजनिक उपक्रम होंगे, ताकि पूंजी पर व्यक्तिगत स्वामित्व एवं पूंजी के संकेन्द्रण पर नियंत्रण रखा जा सके। ऐसी अपेक्षा थी कि ये दोनों मिलकर, एक नयी आर्थिक-सामाजिक रचना एवं नये प्रबुद्ध व्यक्तियों के निर्माण का माध्यम बनेंगे।

मोटे तौर पर सन् 1967 से 1985 के बीच में आंदोलन कई स्वरूप ले रहे थे। किसान आंदोलन के केन्द्र में मध्य व छोटे किसान आ गये। नये ग्राम समाज के निर्माण के बजाय, अब आंदोलन का मुख्य बिन्दु उपज की कीमत, उर्वरक, बिजली, सिंचाई, बीज आदि पर सबसीडी हो गया। भूमिहीन, बटाईदार, सीमांत किसान एवं आदिवासी इन आंदोलनों से बाहर हो गये। जबकि तथाकथित विकास के परिणामस्वरूप ये वर्ग तबाह होते चले गये थे। दूसरी ओर, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम स्थानीय औद्योगिक विकास को मदद करने व बढ़ाने में असफल हुए तथा देश में रोजगार सृजन में भी उनकी भूमिका कमजोर सिद्ध हुई। इन सबके अलावा, उनमें भ्रष्टाचार बढ़ता गया। फलस्वरूप, सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों के विरुद्ध असंतोष बढ़ता गया। जिसका फायदा कारपोरेट घरानों ने उठाया तथा निजीकरण की मांग को बल मिला।

सन् 1974 में संपूर्ण क्रांति आंदोलन ने लोकशक्ति निर्माण द्वारा समाज परिवर्तन की रणनीति को रेखांकित किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् 1977 के बाद अधिकांश आंदोलन राजनीतिक दलों के दायरे के बाहर हुए। किन्तु सन् 1985 आते आते, मोटे तौर पर, अर्ध सामन्ती प्रवृत्तियों के खिलाफ आंदोलन कमजोर होने लगे। क्योंकि अब मजदूरों, बटाईदारों, सीमांत किसानों, आदिवासियों आदि के शोषण का मुख्य माध्यम बड़े भू-स्वामी न होकर, वे नीतियां हो गयीं जो कारपोरेट घरानों को मदद करने के लिए बन रही थी। सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों का निजीकरण, कारपोरेट घरानों को मदद करने के लिए वैश्विक बाजार को खोलना, उनके हित में नीतियों को उदार

बनाना (उदारीकरण) तथा वैश्विक पूंजी के निमंत्रण को बढ़ाने (वैश्वीकरण) जैसी नीतियों के कारण जिनका पहले से ही शोषण हो रहा था, उनका शोषण और तेज हो गया, तथा कई नये वर्ग भी इनके शोषण के दायरे में आ गये।

इन नीतियों का व्यापक विरोध इसलिए नहीं हो पाया क्योंकि (1) ग्राम समाज की पुनर्रचना का सवाल पीछे छूट गया था, (2) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम स्थानीय औद्योगिक विकास को मदद करने व रोजगार सृजन करने में कमजोर सिद्ध हुए तथा इनमें फैले भ्रष्टाचार से लोगों में असंतोष था, और (3) गरीबी, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेय जल जैसे बुनियादी सवालों को सुलझाने में पिछली नीतियां कारगर नहीं सिद्ध हुई थीं। इस बीच एक नये मध्य वर्ग का उदय हुआ जो पुराने आदर्शों को समझने में, सक्षम नहीं था। पिछड़ी जातियों के आरक्षण के खिलाफ एक ऐसा वर्ग एकजुट हो गया, जिसका सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक स्तर पर पहले से वर्चस्व था। किन्तु उन्होंने अपनी ताकत को हिन्दुत्व के नाम पर आगे बढ़ाया। जो ताकतें हाशिये पर थीं, वे बड़ी ताकत बनने लगीं, क्योंकि उन्हें कारपोरेट घरानों का भी साथ मिला।

ऐसे में अहिंसक क्रांतिकारी आंदोलन का अगला चरण क्या हो? पहली जरूरत यह है कि हम समझें कि एक जातीय-साम्प्रदायिक-कारपोरेटी गठजोड़ बना है, जो कुछ वर्गों के वर्चस्व का निर्माण कर रहा है, तथा कई अन्य सामाजिक वर्गों को हाशिये पर ढकेल रहा है। जो सामाजिक वर्ग हाशिये पर ढकेले जा रहे हैं उन्हें एकजुट करना पहली आवश्यकता है। इस एकजुटता का वैचारिक आधार यह होगा कि जिनका वर्चस्व बन रहा है, वे प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण कर उनका दोहन कर रहे हैं तथा उसे नियंत्रण मुक्त बाजार के माध्यम से लूट रहे हैं। जो हाशिये पर ढकेले जा रहे हैं वे उन प्राकृतिक संसाधनों पर परम्परागत लोक-अधिकार रखते थे, और वही उनसे बेदखल किये जा रहे हैं। अतः प्राकृतिक संसाधनों की लूट के खिलाफ एकजुटता का निर्माण करना होगा। गांव की पुनर्रचना एवं पूंजी पर लोक का स्वामित्व, आंदोलन के दो अन्य पहलू होंगे।

—बिमल कुमार

झक सफेद बाल, छोटी छोटी आंखों में चमकती जीत और चेहरे पर मासूम मुस्कान. अटूट मनोबल और रंगभेद खत्म करने की जिद के साथ जीते अफ्रीका के मदीबा...नेल्सन मंडेला. और मंडेला के भीतर बसे महात्मा गांधी. नेल्सन मंडेला ने गांधीवादी विचारों से प्रेरणा लेकर रंगभेद के खिलाफ अपने संघर्ष की शुरुआत की और दक्षिण अफ्रीका के दूसरे गांधी बन गए. नेल्सन मंडेला ने अन्याय के विरुद्ध क्रोध को रचनात्मक रूप दिया. अहिंसा का सशक्त रास्ता ढूंढा।

गांधी ने कहा था कि उन्हें आश्चर्य नहीं होगा अगर किसी दिन कोई अश्वेत नेता उनके सिद्धांतों को आगे ले जाए. मंडेला जब उपनिवेशवाद से लड़ रहे थे, लोगों को जगाने की कोशिश कर रहे थे और अपने संघर्ष के लिए जब उन्हें वैश्विक सहयोग की जरूरत थी तब वह सहयोग कहीं और से नहीं, उनके अपने भीतर से निकला। उनकी अंतर्चेतना में कहीं बहुत भीतर गांधी की विराट चेतना विद्यमान थी। जब चेतना ने चेतना को पहचाना तो गांधी के लिखे शब्द सही हो गये। नेल्सन मंडेला अपने देश की आजादी के लिए गांधी के रास्ते आगे बढ़ चले।

1964 से 1990 तक रंगभेद और अन्याय के खिलाफ लड़ाई की वजह से जेल में जीवन के 27 साल बिताने वाले नेल्सन मंडेला ने ऐसे समय में अहिंसा, असहयोग और सत्य का रास्ता अपनाया, जब दुनिया हिरोशिमा और नागासाकी की हिंसा में डूबी हुई थी. दुनिया विश्व युद्ध के नतीजों से जूझ रही थी. शादी से बचने के लिए अपना घर छोड़ कर भागे नेल्सन मंडेला ने जोहानिसबर्ग में खदान का गार्ड बन कर काम शुरू किया और फिर यहीं से प्रेस की स्वतंत्रता के लिए और रंगभेद के खिलाफ उनकी लड़ाई शुरू हुई.

बर्लिन में गांधी सेवा फाउंडेशन के संस्थापक और अध्यक्ष पीटर रूए कहते हैं कि महात्मा गांधी की अहिंसा और असहयोग की विचारधारा ने मंडेला पर काफी असर डाला. जो लोग राजनीति में अहिंसा का इस्तेमाल करना चाहते हैं, उन्हें अपने जीवन में भी इसे अपनाने की जरूरत पड़ती है. गांधी की अहिंसा और असहयोग की नीति वैश्विक है और देश या समय की सीमा में बंधी हुई नहीं है. गांधी जी

के असहयोग की शुरुआत तो सिर्फ सहयोग न करने के साथ हुई थी लेकिन जल्द ही उन्हें समझ में आ गया कि चुप बैठकर निष्क्रिय प्रतिरोध से कुछ नहीं होगा.

31 जनवरी 2004 को नई दिल्ली आये नेल्सन मंडेला ने शांति और अहिंसा पर वैश्विक सम्मेलन में कहा था कि शांति का मतलब सिर्फ संघर्ष का खत्म हो जाना नहीं है. शांति तब होती है जब सब संपन्न हों, भले ही वह किसी भी जाति, धर्म, देश, लिंग, समाज के हों. धर्म, जातीयता, भाषा, संस्कृति मानव समाज को समृद्ध करती हैं, फिर यह विभाजन और हिंसा का कारण क्यों बनती है?

1952 से 1964 के बीच दक्षिण अफ्रीका में शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शनों का दौर चला. इस दौरान बड़ा नरसंहार हुआ जिसमें 96 लोग मारे गए. यहां से मंडेला के आंदोलन की दिशा बदली. उन्हें लगने लगा कि अहिंसा से अब कुछ नहीं हो सकता. यही बात मंडेला ने एक अदालती सुनवाई के दौरान भी कही. क्या सच में बिना हिंसा के कुछ नहीं हो सकता? पीटर रूए कहते हैं कि गांधी जी ने भी अपना आंदोलन निष्क्रिय प्रतिरोध के साथ ही शुरू किया था लेकिन जल्द ही उन्हें समझ में आ गया कि इससे बात नहीं बनेगी. तब उन्होंने इसे शांतिपूर्ण असहयोग का नाम दिया. नेल्सन मंडेला के उदाहरण से हम देख सकते हैं कि प्यार और अहिंसा से बहुत कुछ हासिल किया जा सकता है.

नेल्सन मंडेला को 5 अगस्त 1962 के दिन पकड़ लिया गया. अपने जीवन के 27 अहम साल मंडेला ने जेल में गुजारे. जेल में भी रंगभेद का बोलबाला था. अश्वेतों को अलग रखा जाता और उन्हें खाना भी कम दिया जाता. जेल में रहने के दौरान मंडेला की लोकप्रियता दुनिया में बढ़ती गई और उन्हें अफ्रीका के सबसे अहम नेताओं में एक माना जाने लगा. इतिहास के किस समय में कौन सी नीति किस देश के काम आती है यह बहुत अहम बात है. वक्त बदलता है, चुनौतियां बदलती हैं. लोग और देश समय के हिसाब से चुनाव करते हैं कि उन्हें क्या चाहिए.

मंडेला ने अपने जीवन में बार बार गांधीवादी विचारधारा की बात की है. सत्याग्रह शुरू होने के 100 साल बाद 2007 में नई

दिल्ली में हुए सम्मेलन में अपने वीडियो संदेश में मंडेला ने कहा था कि दक्षिण अफ्रीका के शांतिपूर्ण बदलाव में गांधी की विचारधारा का योगदान छोटा नहीं है. उनके सिद्धांतों के बल पर ही दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की घृणित नीति के कारण जो समाज में गहरा भेदभाव था वह खत्म हो सका.

हालांकि नेल्सन मंडेला इस बात पर दुःख जाहिर करते हैं कि भले ही दुनिया ने बहुत प्रगति कर ली हो लेकिन शांति और अहिंसा आज भी दुनिया में स्वाभाविक रूप से मुख्य धारा में नहीं आ सकी है. यद्यपि दक्षिण अफ्रीका अगर अफ्रीका की ताकत बनकर उभरा तो इसलिए कि उसके पास दुनिया के सर्वश्रेष्ठ नेता नेल्सन मंडेला थे, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका को शांतिपूर्ण तरीके से उपनिवेशवाद से मुक्त करवाया जो और किसी तरीके से संभव नहीं था.

1993 में शांति नोबेल पुरस्कार पाने वाले नेल्सन मंडेला कहते हैं कि विकास और शांति को अलग नहीं किया जा सकता. शांति और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के बगैर कोई भी देश अपने गरीब और पिछड़े हुए नागरिकों को मुख्य धारा में लाने के लिए कुछ नहीं कर सकता. मंडेला महात्मा गांधी की स्वावलंबन की नीति से बहुत प्रभावित रहे। उन्होंने 2007 के वीडियो संदेश में कहा था कि अगर आज देश स्वावलंबन की नीति को आचरण में ला सके तो विकासशील देशों की गरीबी हट जायेगी और विकास बढ़ेगा.

20वीं सदी को अगर महात्मा गांधी ने बहुत कुछ दिया है तो नेल्सन मंडेला ने उन आदर्शों को आगे बढ़ाया है। पीटर रूए कहते हैं कि नेल्सन मंडेला एक अच्छा उदाहरण हैं कि गांधी जी की विचारधारा किस तरह से मूर्त रूप ले सकती है. 20वीं सदी के प्रभावशाली लोगों में नेल्सन मंडेला के अलावा दलाई लामा, मिखाएल गोर्बाचोव, अल्बर्ट श्वाइत्सर, मदर टेरेसा, मार्टिन लूथर किंग, आंग सान सू ची आदि, ये सब वे लोग हैं जिन्होंने अपने देशों में गांधी की विचारधारा का उपयोग किया और सफलतापूर्वक अहिंसा के रास्ते अपने देशों में परिवर्तन के वाहक बने. यह एक सबूत है इस बात का कि महात्मा गांधी के बाद और भारत के बाहर भी अहिंसा के जरिए अन्याय के खिलाफ सफलतापूर्वक लड़ाई संभव है. —संकलित

जनतंत्र की चुनौतियां और मीडिया की स्थिति

—अनिल प्रकाश



जनतंत्र अगर सिर्फ राजनीतिक ढांचा भर हो और उसमें जनतांत्रिक संस्कृति का अभाव हो तो वह प्रभुत्वशाली वर्गों,

समूहों, सैन्यशक्ति सम्पन्न राष्ट्रों, कारपोरेट घरानों और तानाशाही प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों की कठपुतली भर बनकर रह जाता है। भारत में और कमोबेश दुनियाभर में आज यही स्थिति विद्यमान है। आर्थिक विकास की गलत नीतियों के कारण विषमता बढ़ती जा रही है और दुनिया आर्थिक मंदी झेल रही है। बाजार और संसाधनों के लिए भारी खींचतान चल रही है। इस परिस्थिति में ट्रेड वार भी शुरू हो गया है। ऐसे दौर में अनेक देशों में कट्टरपंथी, नस्लवादी, साम्प्रदायिक, अनुदार शक्तियां सर उठाने लगी हैं। जनता को उनकी बुनियादी समस्याओं से भटकाकर नकली मुद्दों में उलझाने में ये शक्तियां बहुत हद तक कामयाब होती दिख रही हैं। इसके साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध दोहन के कारण हवा, पानी, जमीन, नदियां, भूमिगत जलस्रोत सब बर्बादी के शिकार हैं। धरती के बढ़ते तापमान के कारण पूरी धरती के जीव-जंतुओं, वनस्पतियों और मानव जाति के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लग गया है। इसलिए संकट से निकलने के लिए ऐसी विकास नीति की जरूरत है जो आर्थिक समानता, समाजिक न्याय और प्रकृति रक्षण की ओर उन्मुख हो। मनुष्य और प्रकृति के मधुर सम्बन्धों की बुनियाद पर समता मूलक जनतांत्रिक समाज बनाना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हालांकि बहुत देर हो चुकी है और महाप्रलय की आहट स्पष्ट सुनाई पड़ रही है। तत्काल नई शुरुआत करना जरूरी है।

1977 में खादीग्राम, जमुई में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने कहा था और एकदम सही कहा था कि 'जब तक सामाजिक और आर्थिक विषमता मौजूद है, तानाशाही का खतरा मंडराता रहेगा। तानाशाही के बीज हमारी समाज व्यवस्था में हैं।' तब हमलोग आपातकाल के काले दिनों के बाद

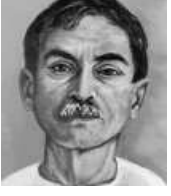
जेलों से निकलकर बाहर आए थे। आज भी हमारा देश उस समस्या से उबरा नहीं है। देश की आर्थिक संपन्नता बढ़ी है लेकिन असमानता अत्यधिक बढ़ती जा रही है। लोगों का असन्तोष जिस दिन फूट पड़ेगा उस दिन पुलिस या फौज भी उसे दबा नहीं पाएगी। विश्व इतिहास साक्षी है कि आमजन को ज्यादा दिन तक नकली मुद्दों और झूठी भावनाओं में भरमा कर नहीं रखा जा सकता। हिटलर का नृशंस दौर भी समाप्त हुआ ही था। ब्रिटिश साम्राज्य की लूट खसोट का सिलसिला आखिर समाप्त हो ही गया। स्वतंत्रता, न्याय और समानता की चाह मानव जाति की सनातन चाह है। यह कभी समाप्त होनेवाली नहीं है।

जनतांत्रिक संस्कृति के मूल्यों के विस्तार के बिना हम सही जनतांत्रिक राजनीति खड़ी नहीं कर सकते। परिवार में भी जनतांत्रिक संस्कृति का अभाव दिखता है। समाज में भी, स्त्री पुरुष के बीच भी समानता और जनतांत्रिक व्यवहार का अभाव है। हमारी गालियां या तो स्त्री को नीचा दिखाने वाली होती हैं या अपने से छोटी जाति को नीचा दिखानेवाली। एक बार नेपाल के जनतांत्रिक आंदोलन के शीर्षस्थ नायक बीपी कोइराला जेपी से मिलने पटना आए थे। 1979 की बात होगी। वे देवेंद्र बाबू (जेपी के मित्र और पूर्व वीसी देवेंद्र प्रसाद सिंह) के यहां रुके थे। शैलजा आचार्य भी थीं। तब नेपाल के राजा की पुलिस उनकी जान के पीछे पड़ी थी। वे तब नेपाल में संवैधानिक राजतन्त्र (ब्रिटेन की तरह का जनतंत्र, जहां राजा भी है) की मांग कर रहे थे। हमने उनसे पूछा- वीपी, आप तो सोशलिस्ट हैं फिर नेपाल के जनतंत्र में राजा की क्या जरूरत है। बीपी कोइराला ने तब कहा कि- 'नेपाल की जनता राजा को भगवान मानती है। अगर नेपाली कांग्रेस राजा विहीन जनतंत्र की मांग करेगी तो जनता उनके विरुद्ध हो जाएगी।' और एक समय आया जब नेपाली जनता में जनतांत्रिक चेतना का इतना विस्तार हुआ कि जनता ने राजतन्त्र और राजा को उखाड़ फेंका। ठीक वही हाल अभी भारत में है। ज्यादातर राजनीतिक दलों में आंतरिक जनतंत्र का घोर अभाव है।

नेताओं के बेटे बेटियां बिना किसी जमीनी काम या अनुभव के सांसद, विधायक, मंत्री और पार्टी के प्रमुख बन जाते हैं। कुछ लेफ्ट पार्टियों को छोड़कर अधिकांश दल इस व्याधि से ग्रस्त हैं। यह इसलिए सम्भव है कि अभी जनता में लोकतांत्रिक चेतना का सीमित विकास ही हो पाया है।

एक और गम्भीर सवाल यह खड़ा है कि माफिया और अपराधी तत्वों को टिकट देने में ज्यादातर दलों को कोई शर्मिंदगी महसूस नहीं होती। उनका एक ही तर्क होता है कि वे जीतनेवाले समर्थ व्यक्ति को टिकट देते हैं। जनता भी अपनी जाति के अपराधी या माफिया को वोट देने में संकोच नहीं करती। अपनी जाति का ईमानदार और शरीफ उम्मीदवार भी मौजूद हो तो भी उसको समर्थन नहीं मिलता। ऐसे में जनतंत्र का ढांचा बेजान और निर्जीव ही तो रहेगा। फिर लोग कहते हैं कि जल संकट है, बच्चे कुपोषण के कारण और उचित चिकित्सा के अभाव में मर रहे हैं लेकिन सांसद, विधायक को कोई मतलब नहीं है। अपने पांव में कुल्हाड़ी मारने पर परिणाम तो भुगतना ही पड़ेगा।

अब मीडिया को देखिए, ज्यादातर हिंदी के अखबारों को सरकारी विज्ञापन के बल पर जेब में रखने की कोशिश जग जाहिर है। कारपोरेट घरानों के प्रभाव में बहुत सी जनहित की खबरें दबा दी जाती हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का भी यही हाल है। 1990 के उदारीकरण के दौर के बाद से शनैः शनैः यह प्रवृत्ति बढ़ती चली गई। अब तो स्थिति बदतर हो चुकी है। सोशल मीडिया से कुछ सही खबरें फैलती हैं और उसका दबाव भी पड़ता है। लेकिन वहां भी झूठ और गंदगी फैलानेवालों का झुंड मौजूद है। ऐसे कठिन दौर में सचेत और जनपक्षी लोगों को अपना अपना दायित्व निभाना ही पड़ेगा। ऐसी कोशिशें जारी हैं। लोग अपनी जान और कैरियर को दांव पर रखकर भी ऐसी कोशिशों में लगे हैं। ये मीडियाकर्मी भी हैं, जज भी, ऐक्टिविस्ट भी, लेखक भी और आम युवा भी। ऐसे लोगों को सलाम। कुहासा जरूर छंटेगा। □



साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलने में शायद लज्जा आती है, इसलिए वह उस गधे की भांति है, जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल में जानवरों पर रोब जमाता फिरता था। साम्प्रदायिकता संस्कृति का खोल ओढ़कर ही आती है। हिन्दू अपनी संस्कृति को कयामत तक सुरक्षित रखना चाहता है, मुसलमान अपनी संस्कृति को। दोनों ही अभी तक अपनी-अपनी संस्कृति को अछूती समझ रहे हैं, वे यह भूल गये हैं कि अब न कहीं हिन्दू संस्कृति है, न मुस्लिम संस्कृति और न कोई अन्य संस्कृति। अब संसार में केवल एक संस्कृति है, और वह है आर्थिक संस्कृति मगर आज भी हिन्दू और मुस्लिम अपनी अलग संस्कृति का रोना रोये चले जाते हैं। हालाँकि संस्कृति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। आर्य संस्कृति है, ईरानी संस्कृति है, अरब संस्कृति है। हिन्दू मूर्तिपूजक हैं, तो क्या मुसलमान कब्रपूजक और स्थान पूजक नहीं हैं? ताजिये को शर्बत और शीरीनी कौन चढ़ाता है, मस्जिद को खुदा का घर कौन समझता है? अगर मुसलमानों में एक सम्प्रदाय ऐसा है, जो बड़े से बड़े पैगम्बरों के सामने सिर झुकाना भी कुफ्र समझता है, तो हिन्दुओं में भी एक वर्ग ऐसा है जो देवताओं को पत्थर के टुकड़े और नदियों को पानी की धारा और धर्मग्रन्थों को गपोड़े समझता है। यहाँ तो हमें दोनों संस्कृतियों में कोई अन्तर नहीं दिखता।

तो क्या भाषा का अन्तर है? बिल्कुल नहीं। मुसलमान उर्दू को अपनी भाषा कह लें, मगर मद्रासी मुसलमान के लिए उर्दू वैसे ही अपरिचित वस्तु है जैसे मद्रासी हिन्दू के लिए संस्कृत। हिन्दू या मुसलमान जिस प्रान्त में रहते हैं, सर्वसाधारण की भाषा बोलते हैं, चाहे वह उर्दू हो या हिन्दी, बंगला हो या मराठी। बंगाली मुसलमान उसी तरह उर्दू नहीं बोल सकता और न समझ सकता है, जिस तरह बंगाली हिन्दू। दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। सीमाप्रान्त का हिन्दू उसी तरह पश्तो बोलता है, जैसे वहाँ का मुसलमान।

फिर क्या पहनावे में अन्तर है? सीमाप्रान्त के हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों की तरह कुरता और ओढ़नी पहनते-ओढ़ते हैं। हिन्दू पुरुष भी मुसलमानों की तरह कुलाह और पगड़ी बाँधता है। अक्सर दोनों ही दाढ़ी भी रखते हैं। बंगाल में जाइये, वहाँ हिन्दू और मुसलमान स्त्रियाँ दोनों ही साड़ी पहनती हैं, हिन्दू और मुसलमान पुरुष दोनों कुरता और धोती पहनते हैं। तहमद की प्रथा बहुत हाल में चली है, जब से साम्प्रदायिकता ने ज़ोर पकड़ा है।

खान-पान को लीजिए। अगर मुसलमान मांस खाते हैं तो हिन्दू भी अस्सी फीसदी मांस खाते हैं। ऊँचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, ऊँचे दरजे के मुसलमान भी। नीचे दरजे के हिन्दू भी शराब पीते हैं, नीचे दरजे के मुसलमान भी। मध्यवर्ग के हिन्दू या तो बहुत कम शराब पीते हैं, या भंग के गोले चढ़ाते हैं जिसका नेता हमारा पण्डा-पुजारी वर्ग है। मध्यवर्ग के मुसलमान भी बहुत कम शराब पीते हैं, हाँ कुछ लोग अफीम की पिनक अवश्य लेते हैं, मगर इस पिनकबाजी में हिन्दू मुसलमानों से पीछे नहीं हैं। हाँ, मुसलमान गाय की कुर्बानी करते हैं और उनका मांस खाते हैं लेकिन हिन्दुओं में भी ऐसी जातियाँ मौजूद हैं, जो गाय का मांस खाती हैं, यहाँ तक कि मृतक का मांस भी नहीं छोड़तीं, हालाँकि बधिक और मृतक मांस में विशेष अन्तर नहीं है। संसार में हिन्दू ही एक जाति है, जो गो-मांस को अखाद्य या अपवित्र समझती है। तो क्या इसलिए हिन्दुओं को समस्त विश्व से धर्म-संग्राम छोड़ देना चाहिए?

संगीत और चित्रकला भी संस्कृति का एक अंग है, लेकिन यहाँ भी हम कोई सांस्कृतिक भेद नहीं पाते। वही राग-रागिनियाँ दोनों गाते हैं। मुगलकाल की चित्रकला से भी हम परिचित हैं। नाट्य कला पहले मुसलमानों में न रही हो, लेकिन आज इस क्षेत्र में भी हम मुसलमान को उसी तरह पाते हैं जैसे हिन्दुओं को।

फिर हमारी समझ में नहीं आता कि वह कौन सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए साम्प्रदायिकता इतना ज़ोर बाँध रही है। वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा

पाखण्ड। यह सीधे-सादे आदमियों को साम्प्रदायिकता की ओर घसीट लाने का केवल एक मन्त्र है और कुछ नहीं। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के रक्षक वही महानुभाव और वही समुदाय हैं, जिनको अपने ऊपर, अपने देशवासियों के ऊपर और सत्य के ऊपर कोई भरोसा नहीं, इसलिए अनन्त तक एक ऐसी शक्ति की ज़रूरत समझते हैं जो उनके झगड़ों में सरपंच का काम करती रहे।

इन संस्थाओं को जनता के सुख-दुख से कोई मतलब नहीं, उनके पास ऐसा कोई सामाजिक या राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है जिसे राष्ट्र के सामने रख सकें। उनका काम केवल एक-दूसरे का विरोध करके लाभ उठाना है। वे ओहदों और रियायतों के लिए एक-दूसरे से चढ़ा-ऊपरी करके जनता पर शासन करने और शासक के सहायक बनने के सिवा और कुछ नहीं करते।

मुसलमान अगर शासकों का दामन पकड़कर कुछ रियायतें पा गया है तो हिन्दु क्यों न सरकार का दामन पकड़ें और क्यों न मुसलमानों की भाँति सुखरू बन जायें। यही उनकी मनोवृत्ति है। कोई ऐसा काम सोच निकालना जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों एक राष्ट्र का उद्धार कर सकें, उनकी विचार शक्ति से बाहर है। दोनों ही साम्प्रदायिक संस्थाएँ मध्यवर्ग के धनिकों, ज़मींदारों, ओहदेदारों और पदलोलुपों की हैं। उनका कार्यक्षेत्र अपने समुदाय के लिए ऐसे अवसर प्राप्त करना है, जिससे वह जनता पर शासन कर सकें, जनता पर आर्थिक और व्यावसायिक प्रभुत्व जमा सकें। साधारण जनता के सुख-दुख से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। अगर सरकार की किसी नीति से जनता को कुछ लाभ होने की आशा है और इन समुदायों को कुछ क्षति पहुँचने का भय है, तो वे तुरन्त उसका विरोध करने को तैयार हो जायेंगे। अगर और ज्यादा गहराई तक जायें तो हमें इन संस्थाओं में अधिकांश ऐसे सज्जन मिलेंगे जिनका कोई न कोई निजी हित लगा हुआ है। और कुछ न सही तो हुक्काम के बंगलों पर उनकी रसोई ही सरल हो जाती है। एक विचित्र

सत्ता की प्रकृति

□ गांधी

बात है कि इन सज्जनों की अफसरो की निगाह में बड़ी इज्जत है, इनकी वे बड़ी खातिर करते हैं।

इसका कारण इसके सिवा और क्या है कि वे समझते हैं कि ऐसों पर ही उनका प्रभुत्व टिका हुआ है। आपस में खूब लड़े जाओ, खूब एक-दूसरे को नुकसान पहुँचाये जाओ। उनके पास फरियाद लिये जाओ, फिर उन्हें किसका गम है, वे अमर हैं। मजा यह है कि बहुतों ने यह पाखण्ड फैलाना भी शुरू कर दिया है कि हिन्दू अपने बूते पर स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। इतिहास से उसके उदाहरण भी दिये जाते हैं। इस तरह की गलतहमियाँ फैला कर इसके सिवा कि मुसलमानों में और ज्यादा बदगुमानी फैले, और कोई नतीजा नहीं निकल सकता। अगर कोई ऐसा जमाना था, तो कोई ऐसा काल भी था, जब हिन्दुओं के ज़माने में मुसलमानों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था, उन ज़मानों को भूल जाइये। वह मुबारक दिन होगा, जब हमारी पाठशालाओं से इतिहास उठा दिया जायेगा। यह ज़माना साम्प्रदायिक अभ्युदय का नहीं है। यह आर्थिक युग है और आज वही नीति सफल होगी, जिससे जनता अपनी आर्थिक समस्याओं को हल कर सके, जिससे यह अन्धविश्वास, यह धर्म के नाम पर किया गया पाखण्ड, यह नीति के नाम पर गरीबों को दुहने की कृपा मिटाई जा सके। जनता को आज संस्कृतियों की रक्षा करने का न अवकाश है न ज़रूरत। 'संस्कृति' अमीरों, पेटभरों का, बेफिक्रों का व्यसन है। दरिद्रों के लिए प्राणरक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है।

उस संस्कृति में था ही क्या, जिसकी वे रक्षा करें। जब जनता मूर्छित थी, तब तक उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था। ज्यों-ज्यों उसकी चेतना जागृत होती जाती है वह देखने लगी है कि यह संस्कृति केवल लुटेरों की संस्कृति थी जो, राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लूटती थी। उसे आज अपने जीवन की रक्षा की ज्यादा चिन्ता है, जो संस्कृति की रक्षा से कहीं आवश्यक है। उस पुरानी संस्कृति में उसके लिए मोह का कोई कारण नहीं है और साम्प्रदायिकता उसकी आर्थिक समस्याओं की तरफ से आँखें बन्द किये हुए ऐसे कार्यक्रम पर चल रही है, जिससे उसकी पराधीनता चिरस्थायी बनी रहेगी। □

सत्ता मिलने पर मनुष्य अंधा व बहरा हो जाता है। ऐन अपनी नाक के नीचे होने वाली बातें भी उसे दिखाई नहीं देतीं, न अपने कानों से टकराने वाले शब्द ही सुनाई देते हैं। इसलिए यह कोई नहीं कह सकता कि सत्ता के मद में उन्मत्त सरकार क्या कर बैठेगी। अतः ...देश-प्रेमियों को मृत्यु, जेल और इसी तरह की अन्य घटनाओं के लिए तैयार रहना चाहिए।



निष्ठा के साथ सेवा करने से जो शक्ति प्राप्त होती है, वह मनुष्य का उदात्तीकरण करती है, लेकिन वह सत्ता जिसे सेवा की दुहाई देकर हथियाने का प्रयास किया जाये और जो केवल अधिक वोटों के बल पर प्राप्त की जा सकती हो, केवल एक भ्रांति है और इसके फंदे से बचना चाहिए।

सत्ता दो प्रकार की होती है। एक वह जो दंड के भय द्वारा प्राप्त की जाती है और दूसरी वह जो प्रेम की कलाओं से अर्जित की जाती है। प्रेम पर आधारित सत्ता दंड के भय से उद्भूत सत्ता की तुलना में हजार गुना अधिक कारगर और स्थाई होती है।

मेरी दृष्टि में, राजनीतिक सत्ता अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह जीवन के सभी क्षेत्रों में लोगों की दशा को सुधारने का एक साधन मात्र है। राजनीतिक सत्ता का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व के द्वारा राष्ट्रीय जीवन को विनियमित करने की क्षमता। यदि राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण बन जाये कि वह अपना नियमन स्वयं कर सके तो फिर किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं है। तब वह प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति कहलाती है। इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं होता है। वह अपने ऊपर इस प्रकार शासन करता है कि अपने पड़ोसी के मार्ग में कभी बाधक न बने, इसलिए आदर्श राज्य में राजनीतिक सत्ता नाम की कोई चीज नहीं होती, क्योंकि उसमें राज्य का ही

अस्तित्व नहीं होता। लेकिन जीवन में आदर्श की पूरी तरह प्राप्ति कभी नहीं हो पाती। इसीलिए थोरू का क्लासिक कथन ही सत्य है कि सबसे अच्छी सरकार वह है जो सबसे कम शासन करे। जहाँ ऊपर से थोपी गई सत्ता को सदा पुलिस और फौज की जरूरत रहती है

वहाँ अंदर से उत्पन्न सत्ता के लिए इनका बहुत थोड़ा या कोई उपयोग नहीं होना चाहिए।

लोकतंत्र तब तक संभव नहीं है, जब तक सत्ता में सभी की भागीदारी न हो, लेकिन लोकतंत्र का इतना पतन नहीं होने देना चाहिए कि वह भीड़तंत्र का रूप ले ले। स्वशासन में अछूत या मजदूर की भी, जिनकी बदौलत आप अपनी आजीविका कमा पाते हैं, भागीदारी होगी। लेकिन आपको उनके संपर्क में आना होगा, जाकर उनकी झोपड़ियाँ देखनी होंगी, जिनमें वे भेड़-बकरियों की तरह भरे रहते हैं। मानवता के इस हिस्से की देखभाल करने का काम आपका है। उनके जीवन को बनाना या बिगाड़ना आपके हाथों में है।

ऐसी कोई मानव संस्था नहीं है जो खतरों से मुक्त हो। जितनी ही बड़ी संस्था, उसके दुरुपयोग का उतना ही ज्यादा खतरा। लोकतंत्र एक महान संस्था है, इसलिए उसका बहुत अधिक दुरुपयोग संभव है। इसका इलाज यह नहीं है कि हम लोकतंत्र से परहेज करें, बल्कि यह है कि उसके दुरुपयोग की संभावनाओं को यथासंभव कम कर दें।

...जब लोगों को राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति हो जाती है तो उनकी स्वतंत्रता में दखलंदाजी भी कम से कम रह जाती है। दूसरे शब्दों में, वही राष्ट्र सच्चे अर्थों में लोकतांत्रिक है जो राज्य की इस तरह की दखलंदाजी के बगैर अपना कार्य सुचारु रूप से तथा प्रभावी ढंग से चलाता है। जहाँ ऐसी स्थिति नहीं है वहाँ लोकतंत्र केवल नाम के लिए है। □

स्रोत : महात्मा गांधी के विचार, पृ. 331-333

एक राष्ट्र एक चुनाव

—सुशील कुमार



एक राष्ट्र एक चुनाव का नारा सत्ताधारियों द्वारा सिक्के की तरह उछाल दिया गया है। यह प्रावधान

प्राथमिक तौर पर असंभव और अव्यावहारिक लगता है। सत्ताधारी भी इस बात को जानते हैं कि यह मुमकिन नहीं है।

इस नारे को उछालने के पीछे का दर्शन है - एक देश, एक भाषा, एक चुनाव, एक धर्म आदि आदि। यह सोच आरएसएस के एकात्म मानववाद और 'एक चालका: अनुवर्तितः' पर आधारित है। यानी देश की पुरातन बहुलतावादी संस्कृति को समाप्त कर एक मोनोलिथिक राज्य और संस्कृति की स्थापना करना। अभी कुछ दिन पहले सरकार द्वारा बुलायी गयी एक सर्वदलीय बैठक का कई प्रमुख विपक्षी पाटियों ने बहिष्कार किया। फिर भी एक समिति बना दी गयी। यह समिति एक चुनाव के मुद्दे पर चर्चाएं चलायेगी। इस तरह की चर्चाओं से संघ और भाजपा के मूल दर्शन यानी मोनोलिथिक स्टेट की परिकल्पना को आगे बढ़ाने में बहुत सुगमता होगी। यही इस बहस को छेड़ने का मूल मकसद है।

मोनोलिथिक स्टेट की ओर बढ़ता हुआ एक कदम जीएसटी के रूप में यह सरकार अपने विगत कार्यकाल में ही उठा चुकी है। इस कर प्रणाली को भी एक देश, एक कर के नारे के साथ ही लागू किया गया था। तो क्या जीएसटी ने अर्थव्यवस्था की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को मोनोलिथिक किया? इससे केन्द्रीकरण बढ़ा या विकेन्द्रीकरण हुआ? अर्थव्यवस्था बहुत से किन्तुओं, परन्तुओं के साथ तब भी ऊबड़खाबड़ थी, आज भी है। जीएसटी से अर्थव्यवस्था की शक्ति कहां संचित हुई? अर्थ व्यवस्था की वर्तमान मंदी और आने वाली व्यापक मंदी के अनेक कारणों में क्यों का केन्द्रीकरण भी है। तो एक देश, एक कर का जुमला कितना सार्थक हुआ?

इसलिये एकल चुनाव की अव्यवहारिकता और कानूनी पहलुओं पर चर्चा के साथ-साथ वर्तमान सत्ता के इस दूरगामी लक्ष्य के प्रति भी सतर्कता पूर्वक विमर्श जारी रखना जरूरी है।

सर्वोदय जगत

हमारा देश एक लोकतांत्रिक देश है। हमारे देश की लोकतांत्रिक इमारत को ढांचा देने, इसके स्वरूप को निखारने और निरंतर जनोन्मुखी बनाते जाने की प्रक्रिया में हमारे पुरखों - नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, डा. लोहिया और जयप्रकाश नारायण जैसी विश्व प्रसिद्ध हस्तियों का अप्रतिम योगदान रहा है। इन पुरखों ने जो हमें सिखाया है, उसके अनुसार हमारे लोकतंत्र का आशय है - सत्ता और संपत्ति का विकेन्द्रीकरण, बहुलतावादी संस्कृति, आम मतदाता की सही आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति की अक्षुण्णता, राष्ट्र के संघीय ढांचे की मजबूती, क्षेत्रीय भाषाओं और प्रश्नों को समुचित स्थान आदि। इन अवयवों को सीमित या खंडित करने का कोई भी प्रयास अलोकतांत्रिक माना जायेगा।

उपरोक्त नजरिये से वर्तमान में केन्द्रीय सरकार द्वारा 'एक देश एक चुनाव' के ऊपर चलाई जा रही बहस को परखने की जरूरत है। यह मुद्दा वर्तमान की नई राजग सरकार ने सबसे अहम मुद्दे के रूप में देश के सामने पेश कर दिया है। इसका आशय यह है कि देश की आर्थिक हालत, वैश्विक चुनौतियां, बेरोजगारी, सूखा, किसानों की दुर्व्यवस्था आदि से भी ज्यादा महत्व इस सरकार के लिए 'एक देश एक चुनाव' है। विपक्ष के बहुत सारे दलों की अनुपस्थिति के बावजूद आनन-फानन में इसके लिए एक समिति भी बना दी गयी। अनुपस्थित दलों को गैरजिम्मेदार बताने की मुहिम भी शुरू कर दी गयी। बिकाऊ मीडिया के द्वारा इसके पक्ष में तथाकथित बौद्धिक विमर्श भी शुरू कर दिया गया है।

विधान सभाओं और लोक सभा के चुनाव एक साथ कराने के कानूनी, सांवैधानिक और राजनीतिक पहलुओं पर चर्चा जारी है। इस लोकलुभावन और आकर्षक नारे के मुख्य लाभ बताये जाते हैं कि 1. इससे चुनाव खर्च में भारी कमी होगी। 2. चुनाव के समय आचार संहिता के कारण महत्वपूर्ण फ़ैसले पर रोक के कारण विकास में रुकावट नहीं होगी। 3. इससे काले धन पर रोक लगेगी। आइये एक-एक कर इन तर्कों को परखने की कोशिश करें।

1. **चुनाव खर्च** : पहली बात तो हमें यह मान लेनी चाहिए कि लोकतंत्र कोई सस्ती

और बाजारू व्यवस्था नहीं है। जनता की सही आकांक्षाओं की वास्तविक अभिव्यक्ति की शर्त पर खर्च का रोना रोने को लोकतंत्र के खिलाफ साजिश माना जाना चाहिये। अपनी मनमर्जी से राजनीतिक लाभ के लिये 3000 करोड़ रु. की मूर्ति स्थापित की जा सकती है, लेकिन चुनाव में 6000 करोड़ रुपये का खर्च अपव्यय लगे, तो इसे क्या कहा जायेगा? चुनाव के सरकारी खर्च में इस एकल चुनाव से कितनी बचत होगी, यह भी हिसाब लगाना चाहिए। वर्तमान में चुनाव ई.वी.एम. मशीन से हो रहे हैं। अलग-अलग चुनाव होने से एक ही सेट की मशीन का इस्तेमाल कई चुनावों में होता है। एक साथ चुनाव कराने पर लाखों की संख्या में मशीनों को बढ़ाना होगा। इस पर आने वाले व्यय और अन्य व्ययों का हिसाब लगाया जाय तो दोनों प्रकार के चुनावों में खर्च का अंतर मामूली रह जाता है। हां एकल चुनाव में मशीन बनाने वाली कंपनियों की भारी कमाई जरूर होगी।

दूसरी बात राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव में किये जाने वाले खर्चों का है। राजनीतिक दलों द्वारा बेशुमार खर्च ने हमारे लोकतंत्र को अपहृत कर लिया है। हाल के चुनाव को देखें तो सत्ताधारी दल द्वारा अकूत धन राशि खर्च की गयी। अन्य दलों द्वारा भी खर्च किये गये, लेकिन यह सत्ता पक्ष की तुलना में नगण्य है। चुनाव आयोग द्वारा उम्मीदवारों के लिए व्यय सीमा निर्धारित है। इसके बावजूद सीमा से कई गुना ज्यादा खर्च हर उम्मीदवार करता है, यह जगजाहिर है। राजनीतिक दलों द्वारा किये जाने वाले खर्च की तो कोई सीमा ही नहीं है। एक तरह से कहें तो पैसे के बल पर लोकतंत्र को हाइजैक कर लिया जाता है। क्या एकल चुनाव से इस पर अंकुश लग पायेगा? चुनाव व्यय को कम करने का सबसे कारगर उपाय तो यह है कि दलों और उम्मीदवारों द्वारा चुनाव व्यय पर पूरी तरह रोक लगा दी जाय। चुनाव खर्च का वहन सरकार करे। इसके लिए नियामक बनाये जायें।

2. **आचार संहिता के कारण सरकारी निर्णयों पर रोक से विकास में बाधा** : यह बड़ा ही हास्यास्पद तर्क है। अपने पूरे कार्यकाल तक काम करने के बाद भी महज महीने दो महीने नयी योजनाओं की घोषणा न होने से

विकास रुक जायेगा, यह तो विचित्र तर्क है। पहले की निर्णीत नीतियों और परियोजनाओं पर तो आचार संहिता का कोई असर नहीं पड़ता। फिर विकास कार्यों में बाधा की बात क्यों कही जाती है? यह विशुद्ध रूप से भ्रम फैलाना है। हां, एक बात सही है कि आचार संहिता का हौवा इतना बढ़ा चढ़ा कर खड़ा किया गया है कि चुनाव के दौरान सरकारी कार्यक्रम तो दूर की बात है, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन कराने में भी प्रशासनिक अनुमति लेने के लिए एड़ी-चोटी एक करनी पड़ती है। जबकि आचार संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। आचार संहिता के नाम पर फैलाये गये आतंक पर चुनाव आयोग को विशेष ध्यान देने की जरूरत है। बाकी चुनाव के दौरान निर्णयों के कार्यान्वयन में बाधा की बात बेमानी है। सरकारी कर्मचारियों की व्यस्तता का रोना भी रोया जाता है। यह व्यस्तता भी महज एक या दो दिन की ही होती है। बाकी दिनों में सामान्य काम सुगमता से चल सकते हैं और चलते भी हैं। हां, इस नाम पर पदाधिकारियों और कर्मचारियों को काम न करने का एक बहाना जरूर मिल जाता है।

3. काले धन पर रोक : इस कैसर रुपी रोग का समाधान एकल चुनाव से कैसे हो जायेगा, यह बात समझ से परे है। चुनाव में काला धन दलों और उनके उम्मीदवारों द्वारा ही खर्च किया जाता है, इसमें तो कोई संदेह नहीं है। क्या एक साथ चुनाव कराने पर ये दल और उम्मीदवार चुनावों में काला धन खर्च करना कम कर देंगे? यह तर्क तो एक तरह से इस बात की स्वीकृति है कि हम चुनाव में काले धन का उपयोग करते हैं, उसमें थोड़ी सहूलियत हो जायेगी। यानी कुछ कम काला धन व्यय करना पड़ेगा। इस तरह की बातें करना भी लोकतांत्रिक अपराध की श्रेणी में आयेगा।

हमारे संघीय शासन के ढांचे में केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकारें होती हैं, जो आम मतदाताओं के मत से चुने गये प्रतिनिधियों से बनती हैं। विधान सभाओं और लोक सभा में बहुमत के दल को सरकार बनाने का मौका मिलता है। यह बहुमत जनता की आकांक्षाओं का प्रतीक है। जिस दिन विधान सभा या लोक सभा में यह बहुमत खत्म हो जाता है, सरकार का बने रहना असंवैधानिक हो जाता है।

लोकतंत्र में सरकारें किसी भी मुद्दे पर और कभी भी खो बहुमत सकती हैं। इसके लिए अविश्वास प्रस्ताव का प्रावधान भी है। विधान सभा और लोक सभा में यह स्थिति कभी भी आ सकती है, यह लोकतांत्रिक अधिकार के तहत हो सकता है। डा. लोहिया ने तो यहां तक कह दिया कि 'जिंदा कौमें पांच साल तक इंतज़ार नहीं करतीं'। अगर कभी ऐसी स्थिति हो कि पांच साल की निर्धारित अवधि के पहले सदन में बहुमत की सरकार गिर जाये, वैकल्पिक सरकार की स्थिति नहीं बन रही हो तो क्या शेष अवधि तक बिना किसी सरकार के सारी व्यवस्था राष्ट्रपति या राज्यपाल के शासन में चलती रहेगी? जब तक निर्धारित पांच साल की अवधि पूरी न हो जाये? क्या इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था माना जायेगा? जन-प्रतिधित्व कानून और संविधान में चाहे जितने भी बदलाव और संशोधन कर दिये जायें, उससे लोकतंत्र को बाधित होना ही पड़ेगा। इसलिए एकल चुनाव का नजरिया पूरी तरह से अव्यावहारिक और अलोकतांत्रिक है।

हमारे लोकतंत्र के संघीय ढांचे में राज्यों की अपनी चुनी हुई स्वायत्त सरकारें होती हैं।

अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें हो सकती हैं। राज्य और केन्द्र के अधिकार और दायित्व परिभाषित हैं, जो अलग-अलग और कुछ सम्मिलित भी हैं। एक साथ केन्द्र और राज्य के चुनावों से यह संघीय व्यवस्था क्षेत्रीय आकांक्षाओं और जरूरतों को पूरा करने पाने में अक्षम साबित होंगी। इस व्यवस्था से हमारा लोकतंत्र एक दलीय या दो दलीय व्यवस्था में बदल जायेगा, जो बहुलतावादी लोकतंत्र के विरुद्ध होगा। वैसे भी वर्तमान समय में हमारा लोकतंत्र व्यक्ति आधारित होता जा रहा है। एक व्यक्ति के करिश्मे से चमत्कृत होता हुआ तंत्र अंततः अधिनायक तंत्र की तरफ ही बढ़ता है, यह हमारे देश और दुनिया का इतिहास है। दुष्यंत ने कहा था - 'रहनुमाओं की अदाओं पे फिदा है दुनियां, इस बहकती हुई दुनिया को संभालो यारों'।

यह मुद्दा चुनाव सुधार का नहीं बल्कि एकाधिकारवादी शासन तंत्र की स्थापना की साजिश का एक हिस्सा है। इससे सतर्क रहते हुए इस 'एक राष्ट्र एक चुनाव' के छद्म और लोकलुभावन नारे का पुरजोर विरोध करना जरूरी है। □

ईपी मेनन का सत्ताधीशों के नाम खुला पत्र

विश्वनीडम् सेन्टर बंगलोर के ईपी मेनन ने देश के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, प्रधान न्यायाधीश, लोकसभा अध्यक्ष, सभापति राज्यसभा और मुख्य चुनाव आयुक्त को संबोधित करते हुए 10 जून 2019 को एक खुला पत्र भेजा है। विश्वनीडम् सेन्टर फॉर ह्यूमनिज्म के संस्थापक सदस्यों में से एक मात्र जीवित सदस्य ईपी मेनन ने विश्वनीडम् सेन्टर तथा अपने समान विचारधर्मी साथियों की तरफ से माननीयों को बधाई देते हुए लिखा है कि 10 सितंबर 1965 को आचार्य विनोबा भावे के आशीर्वाद से देश के दूसरे राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने विश्वनीडम् का उद्घाटन किया था और वहां उपस्थित हम सभी कार्यकर्ताओं से मानवता के कल्याण और वसुधैव कुटुम्बकम् के लिए काम करने का आवाहन किया था। उस दिन राष्ट्रपति के बैठने के लिए एक कुर्सी भी हमें अपने पड़ोसी और तत्कालीन गृहमंत्री आर. एम. पाटिल से उधार मांगकर लानी पड़ी थी।

इस पत्र में दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की बन रही नयी तस्वीर पर चिन्ता व्यक्त की गयी है। पत्र में लिखा गया है कि हमारी नव निर्वाचित लोकसभा में 43% सदस्यों का रिकार्ड अपराधिक है। सवाल है कि लोकसभा में जा बैठे ये अपराधी किस प्रकार के लोकतंत्र का निर्माण करेंगे और किसके फायदे के लिए करेंगे? इसके लिए कौन जिम्मेदार है? 130 करोड़ देशवासियों के हक में इन परिस्थितियों में बदलाव कौन करेगा? अगर देश की राजनीतिक पार्टियां देश को अराजकता की ओर ले जा रही हैं तो आप सभी द्वारा क्या किया जा रहा है, जिनके हाथ में संविधान ने शासन की शक्ति दे रखी है? नयी पीढ़ी के युवा गहरी हताशा के दौर से गुजर रहे हैं और कानून अपने हाथ में ले रहे हैं। उन्हें हम राष्ट्रवादी मानें? कि देशभक्त समझें? उन्हें अपराधी कहें या आतंकवादी मानें? इन सवालों का जवाब कौन देगा? इन युवाओं की ऊर्जा का रचनात्मक सदुपयोग कौन करेगा?

बुंदेलखण्ड

पानी विहीन होती धरती और पलायन करते लोग



भौगोलिक बुंदेल-खण्ड उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान के बीच बँटा हुआ है। बुंदेलखण्ड अपने बीहड़ों और डाकुओं के लिए तो प्रसिद्ध था ही, अब यह क्षेत्र लगातार पड़ने वाले सूखे के कारण भी प्रसिद्ध होता जा रहा है। इस मौसम में जनपद बाँदा पीने के पानी की किल्लत के लिए समाचारों में है। महोबा आल्हा-ऊदल के काल से बाहर निकल कर अब गिद्धी-क्रशर के काल में बरबादी की कगार पर है। टीकमगढ़ भी क्रशर व्यवसाय के कारण तबाह हो चुका है। हमीरपुर अंधाधुंध बालू खनन की गिरफ्त में है। जालौन अपने रिवायती फसल चक्र-मसूर-मटर को छोड़कर मेंथा की खेती अपना चुका है। चित्रकूट पर संतों का कब्ज़ा है। झाँसी अपने रेलवे जंक्शन के कारण प्रसिद्ध है। ललितपुर, दतिया, झाँसी, ग्वालियर, शिवपुरी, भिण्ड, चंदेरी और धौलपुर आपस में मिलकर एक अलग सांस्कृतिक इकाई बनाते हैं। छतरपुर, दमोह, सागर, टीकमगढ़ और विदिशा एक अलग इकाई बनाते हैं। इन सभी इकाइयों को आपस में जोड़ने वाली धुरी अब सांस्कृतिक विरासत न होकर वहाँ का भौगोलिक संकट बन गयी है। यह भौगोलिक संकट ऐसा नहीं है कि पहले नहीं था। लेकिन इस भयावह रूप में वह अब सामने आ रहा है। इस भूगोल से पानी पलायन कर चुका है तो अब घरों से इंसान भी पलायन को मजबूर है। इस क्षेत्र में आदमी दिखते हैं तो घाटमपुर के जाम में, जो हमीरपुर का बालू ढोते ट्रकों के कारण लगता है या फिर कालपी-भोगनीपुर में, जहाँ का जाम इलाहाबाद से झाँसी-दिल्ली जाने वाले या हमीरपुर से बालू ढोते ट्रक लगाते हैं।

हर गर्मी में बुंदेलखण्ड में पानी के अकाल पर बहस होती है। लेकिन इसकी जड़ें बुंदेलखण्ड की भूमि की अवहेलना से शुरू होती हैं। इस भूमि के क्षरण के सामाजिक

कारण भी जरूर हैं लेकिन यह मुद्दा इस लेख का हिस्सा नहीं है। इतिहास गवाह है कि आबादी वहीं बसती है, जहाँ जल हो। बुंदेलखण्ड का दक्षिणी-पूर्वी हिस्सा पहाड़ी-पठारी है। सदियों से यहाँ निवास करने वाले लोगों ने इन इलाकों में जल संग्रहण के लिए तालाबों की एक शृंखला तैयार की जो सालों-साल पानी की जरूरतों को पूरा करते रहे। बुंदेलखण्ड के तालाबों के बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार कर डॉ काशीप्रसाद त्रिपाठी के meswww.bundelkhand.in नामक पोर्टल पर डाली गयी है, जिसमें हर तालाब का इतिहास, उसकी दुर्गति और उसके विलोपन का विवरण है। उस पोर्टल ने बुंदेलखण्ड के सैकड़ों तालाब गिनाए हैं। देश के विकास के आधुनिक इतिहास पर अगर नज़र डालें तो तालाबों को उसकी बड़ी मार झेलनी पड़ी है। तालाब या तो अवहेलना के शिकार हुए या फिर रिहायशी बस्तियों के विस्तार के गाल में समा गए, या खेती में समाहित कर लिए गए। जो तालाब अवहेलना के कारण दुर्गति को प्राप्त हुए उनको भी अंततः शहरी विकास या खेती ने लील लिया। तालाब सिर्फ जल संग्रहण नहीं करते, भूगर्भ में जल का भंडारण भी करते हैं, जो जरूरत पड़ने पर कुएँ और ट्यूबवेल के माध्यम से जल की आपूर्ति करते रहते हैं। इसके साथ ही ये तालाब जमीन पर बारिश के दौरान पड़ने वाले बरसाती पानी के वेग को कम करके, उनकी गाद को अपने गर्भ में रोककर साफ पानी नदी में जाने देते हैं। इस प्रकार वे बाढ़ को रोकने में भी सहायक होते हैं। एक वैज्ञानिक पैमाना है जाँचने का कि किसी क्षेत्र में भूमि संरक्षण का कितना खयाल रखा जाता है। बरसात के दिनों में नदियों के पानी का गँदलापन बता देता है कि अमुक क्षेत्र अपनी भूमि की कितनी चिंता करता है। तालाब नदी के पानी को गँदला होने से रोकता है। बुंदेलखण्ड में तालाबों का अस्तित्व खतरे में पड़ने के कारण एक तरफ जहाँ क्षेत्र में पानी की कमी होने लगी

है, वहीं क्षेत्र से होकर गुज़रने वाली नदियाँ अंकुश से बाहर होकर दूसरे मैदानी क्षेत्रों में तबाही मचा रही हैं।

तमिलनाडु और कर्नाटक के बीच कावेरी जल-विवाद प्रसिद्ध है। कुछ साल पहले यह लेखक तिरुच्चिरापल्लि (त्रिचिरापल्ली) शहर की यात्रा पर गया था। नगर भ्रमण के दौरान वहाँ के एक नागरिक ने बताया कि शहर में कभी इकतालीस तालाब हुआ करते थे, लेकिन अब बस एक बचा है। बाकी तालाबों को रिहायशी कॉलोनियों ने लील लिया। इससे आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि कावेरी नदी का विवाद कोई कोर्ट नहीं हल कर सकता। सिर्फ जनता के ही पास हल मौजूद है और वह है तालाबों को जिन्दा करना जिससे बारिश का पानी तालाबों में जमा हो और वह कावेरी नदी को पानी फीड करे। कुछ संस्थान इस कार्य में जी जान से लगे हुए हैं। इस प्रकरण से बुंदेलखण्ड की जल समस्या के बारे में अंदाज़ा लगाया जा सकता है। अभी हाल ही में यह लेखक महोबा शहर की यात्रा पर था। लोगों को जानकर खुशी होगी कि महोबा के नागरिक जिले का भूगोल बदलने के लिए कृतसंकल्प हैं। लोग जेसीबी मशीन किराए पर लेकर गाँवों में घूम घूम कर तालाब खुदवा रहे हैं। कुछ नागरिक तैयारी कर रहे हैं कि आपसी सहयोग से तालाब खोदने हेतु जेसीबी मशीन खरीदी जाय। यह नागरिक प्रयास, हो सकता है, एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर ले। फिलहाल महोबा जिले की सबसे बड़ी समस्या है क्रशिंग उद्योग जिससे जिले का पर्यावरण नष्ट हो रहा है और पानी का संकट पैदा हो रहा है। पास के हमीरपुर जिले में बालू खनन के कारण नदियों का बेड प्रभावित हो रहा है।

आईसीएआर द्वारा 2010 में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार बुंदेलखण्ड में भूमि का क्षरण मुख्यतः जल के अनियंत्रित बहाव के कारण होता है। यह क्षरण इतना भारी है कि उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड में मिट्टी का बहाव दस टन

से भी अधिक प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष के दर से होता है। अगर उत्तर प्रदेश में बुंदेलखण्ड के जिलों पर नज़र डालें तो इन जिलों में कुल भूमि का लगभग 74 प्रतिशत हिस्सा जल क्षरण से प्रभावित है। उत्तर प्रदेश के जलक्षरण से प्रभावित 17 प्रतिशत से ज्यादा भूमि बुंदेलखंड में है। प्रदेश की कुल बरबाद और बंजर भूमि का लगभग 16 प्रतिशत हिस्सा बुंदेलखण्ड में स्थित है, जबकि उत्तर प्रदेश की कुल बरबाद, बंजर और खेती योग्य भूमि का 12 प्रतिशत से ऊपर का भाग बुंदेलखण्ड में है। मध्य प्रदेश के बुंदेलखण्ड की स्थिति अलग नहीं है। ये वो ज़मीनें हैं जो साल-दर-साल भूमि की घोर अवहेलना के कारण पैदा हुई हैं। बुंदेलखण्ड के बीहड़, जिनको तकनीकी शब्दावली में गली कहते हैं, इसी कारण बने हैं। मिट्टी में बहते हुए पानी को रोकने की क्षमता होती है। जब मिट्टी ही बह जाए तो पानी कौन रोके। मिट्टी में मौजूदा कार्बनिक पदार्थ अपनी मात्रा से कई गुना अधिक पानी सोखकर रोक सकते हैं। ये

कार्बनिक पदार्थ वनस्पतियों के कारण मिट्टी की ऊपरी सतह में बनते हैं। मिट्टी नहीं तो वनस्पति कहाँ से आये, वनस्पति नहीं तो मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ कहाँ से आए और मिट्टी व कार्बनिक पदार्थ की अनुपस्थिति में पानी रुके कहाँ! वनों की अन्धाधुन्ध कटाई के कारण हालत यह है कि जंगल के नाम पर जो कुछ भी बुंदेलखंड में बचा है, उसमें से अधिकांश मध्य प्रदेश के हिस्से में है। उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड में जंगल के नाम पर कुछ बचा है तो चित्रकूट में। बाकी जिलों में जंगल ज्यादातर विदेशी बबूल के रह गए हैं।

गर्मी की गरमागरम बहस बुंदेलखण्ड की ओर रुख करती है। पत्रिकाओं में दारुण फोटो के साथ एक्सक्लूसिव रिपोर्ट की बाढ़ आ जाती है। उपाय के बारे में कोई बात नहीं होती। लोगों द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों को प्रकाश में लाए जाने की खबर कहीं नहीं होती। बुंदेलखण्ड में सूखे से पार पाने का उपाय सरकार और जनता के पास है। सरकार और जन भागीदारी के बिना

यह सम्भव नहीं है। यह कार्य असम्भव भी नहीं है। महोबा में कुछ सुधीजन तालाब को गहरा करने तथा नए तालाब खोदने का कार्य कर रहे हैं, उसे प्रोत्साहन देने की जरूरत है। क्षेत्र में काम कर रहे बैंक किसानों को ऋण देने की शर्त के तौर पर वृक्षारोपण को बढ़ावा दे सकते हैं। तमाम एनजीओ और माइक्रो. फाइनैस कम्पनियाँ जलसंरक्षण में सहयोग कर सकती हैं। यह उनके अपने व्यवसाय के हित में होगा।

गरीबी भूमि के अत्यधिक दोहन को बढ़ावा देती है। बुंदेलखण्ड में पानी की किल्लत के साथ-साथ गरीबी भी प्रचंड है। कोई भी जल और भूमि-संरक्षण तब तक सफल नहीं होगा जब तक कि गरीबी पर प्रहार न किया जाए। गरीबी के कारण बुंदेलखंड से रोज़ी रोज़गार के कारण लोगों के पलायन की पिछले कुछ समय में बाढ़ आई है। लोग न होंगे तो जल-भूमि संरक्षण कौन करेगा! बुंदेलखण्ड में जल हो, इसके लिए एक ईमानदार कोशिश की जरूरत है, वह कहीं नहीं दिखाई देती। □

श्रद्धांजलि

झरणाधरा चौधुरी



सुप्रसिद्ध सोशल ऐक्टिविस्ट और गांधी आश्रम ट्रस्ट, नोआखाली की सेक्रेटरी झरणा धरा चौधुरी का 27 जून को बांग्लादेश की राजधानी ढाका में देहांत हो गया। वे 15 अक्टूबर 1938 को लक्ष्मीपुर में पैदा हुईं और आजीवन साम्प्रदायिक सद्भाव, सामाजिक न्याय और शांति के प्रसार के काम में जुटी रहीं। वे सत्य प्रेम करुणा और अहिंसा के आदर्शों से गहरे प्रभावित रहीं। भारत सरकार ने उनकी सेवाओं के सम्मान में 2013 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया। 1998 में जमनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित झरणाधरा चौधुरी बेगम रुकैया पदक, गांधी सेवा पुरस्कार तथा एकेशे पदक से भी सम्मानित की जा चुकी थीं।

मोहम्मद बाजी



सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी मोहम्मद बाजी का निधन 22 जून को नबरंगपुर उड़ीसा में हुआ। उनका जन्म 20 जनवरी 1917 को हुआ था। वे जनजातीय नागरिक अधिकारों के कार्यकर्ता लक्ष्मण नायक के करीबी थे। वे 1936 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुए। उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया था, जिसके चलते उन्हें 5 वर्ष अंग्रेजों की जेल में बिताने पड़े। 25 जून 1947 को उन्हें रिहाई मिली थी। स्वतंत्रता के बाद मोहम्मन बाजी सर्वोदय आंदोलन में सक्रिय रहे। वे उत्कल गांधी स्मारक निधि के चेयरमैन थे। 1992 में बाबरी विध्वंस के समय उन पर साम्प्रदायिक शक्तियों ने हमला किया था और वे गंभीर रूप से घायल हो गये थे।

हेमा दास



सुविख्यात सर्वोदय नेता लक्ष्मीदास जी की पत्नी हेमा बहन का 28 जून की सुबह दिल्ली में हृदयाघात से देहांत हो गया। उन्हें देश के तमाम राष्ट्रीय नेताओं के साथ काम करने का अनुभव मिला। उन्होंने विश्वम् मैत्री महिला यात्रा में भी भाग लिया। वे अपने परिवार में ही नहीं, सार्वजनिक जीवन में भी बड़ी प्रेरणा व स्तम्भ थीं। उन्होंने परिवार की परवरिश के साथ-साथ सर्वोदय परिवार में भी कार्यकर्ताओं को विचारनिष्ठ कार्यों की प्रेरणा दी। उनके असमय अवसान से पूरा सर्वोदय परिवार मर्माहत है। उन्होंने पवनार आश्रम में विनोबा की छाया में रहकर भी कार्य किया। यह विनोबा के सान्निध्य का ही असर था कि उनके जीवन में अन्य सदगुणों के साथ-साथ प्रेरणा-पुंज का भी निरंतर विकास होता गया, जो उनके सान्निध्य में काम करने वाले युवाओं का संबल बना।

सर्व सेवा संघ दिवंगत आत्माओं के प्रस्थान से अत्यंत मर्माहत है और उनके सम्मान में अपनी श्रद्धांजलि निवेदित करता है।

विकास का शोर और संवदेनहीन व्यवस्था की विफलता

प्रागैतिहासिक कालखंड से लेकर सभ्यता के वर्तमान विकासवादी दौर तक एक विहंगम दृष्टि डालें तो पाते हैं कि विकास की इस रहस्यमय दौड़ में मानवता खंड खंड होती गयी है। विकास की यात्रा संपूर्ण मनुष्यता की यात्रा कभी नहीं बन पायी। प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों का बंटवारा सही अनुपात में नहीं होने दिया गया। विकास की यात्रा में आदमीयत के टुकड़े हुए हैं। एक तरफ शक्तिसम्पन्न और शोषक सामर्थ्यवानों द्वारा चांद और मंगल पर बस्तियां बसाने के सपने हैं, तो दूसरी तरफ साधन और संसाधनविहीन आबादी के अंतहीन संघर्ष हैं, जहां भूख, प्यास और अभावों का साम्राज्य है।

बहुचर्चित चमकी बुखार (एईएस) के कहर की पिछले कई दशकों से लगातार हर साल शिकार हो रही एक बड़ी आबादी की अभावग्रस्त जिन्दगी इस बदनूमा तस्वीर की तफसील बयां करती है। मुजफ्फरपुर और आसपास के जिलों में शहरों के इर्द गिर्द बसे स्लम्स में अपनी जिन्दगी घसीट रहे परिवारों के बच्चे ही अमूमन इस बीमारी के शिकार होते हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वहीं, उन्हीं इलाकों में रहने वाले सुविधासम्पन्न परिवारों में इस बीमारी का प्रकोप नहीं होता। जाहिर है कि इस जानलेवा बीमारी के पीछे मेडिकल साइंस का कोई रहस्य नहीं, बल्कि गरीबों की गरीबी खड़ी है। निचाट आसमान के नीचे, 48° तापमान में झुलसती हुई धरती पर, लू के गरम थपेड़ों का सामना करते नंग धड़ंग इन बच्चों को दो, दो, तीन तीन दिन तक खाना नसीब नहीं होता, इनको पीने के लिए साफ पानी नहीं मिलता, जो मिल पाता है, वह हजार-हजार रोगाणुओं से खुद ग्रस्त होता है। इनकी झोपड़ियों के अगल-बगल फैला गंदी नालियों का पानी, कीचड़ और बदबूदार वातावरण प्राण घातक मच्छरों को पनाह देते हैं।

सर्व सेवा संघ के सेक्रेटरी और सोशल

एक्टिविस्ट रमेश पंकज मुजफ्फरपुर के रहवासी हैं। वे कई सालों से बच्चों के लिए प्राणघातक इस बीमारी के कारण और निवारण की पड़ताल में लगे हैं। इस सिलसिले में 2014 में बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री जीतन राम मांझी से भी मिले और अपने निष्कर्ष उन्हें बताये। मीटिंग में मौजूद एम्स नई दिल्ली की मेडिकल टीम ने भी उनके निष्कर्षों से सहमति जतायी। उन्होंने सर्वोदय जगत को बताया कि—‘पिछले दो दशकों से मुजफ्फरपुर और आसपास के जिलों में छः मास से तीन वर्ष के बच्चों और बच्चियों की हर साल सैकड़ों की संख्या में मौतें हो रही हैं। मौत के कारणों के बारे में चिकित्सा विभाग अभी भी अंधेरे में है। पहले इसे विशेष जापानी बुखार कहा गया, बाद में एईएस कहा गया और आज स्थानीय भाषा में इसे चमकी बुखार कहा जा रहा है। हर साल मई और जून महीने में यह बुखार उन्हीं घरों को ज्यादातर प्रभावित करता है जो भूख, कुपोषण और गरीबी के कारण अन्य सुविधाओं से वंचना के शिकार हैं। पीने का शुद्ध पानी तक उपलब्ध न होना, भूखे पेट कई-कई रात सो जाना, गंदगी और मच्छरों के प्रकोप में जीना और उस पर मई-जून महीने की तपिश को झेलना, इनकी और इनके बच्चों की नियति है। सरकार की कल्याणकारी योजनाएं दिल्ली और पटना से चलती तो हैं लेकिन ऐसे लोगों तक पहुंच नहीं पातीं। भूख, कुपोषण, गरीबी, गंदगी और उच्च तापमान में खुले में रहने की विवशता इन बच्चों से रोग-प्रतिरोधक क्षमता छीन लेती है।’

मुजफ्फरपुर का इलाका अपनी लीचियों के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध है। फसल के समय गर्मियों में जब लीची की तोड़ाई का समय आता है तो मजदूर प्रायः इन्हीं स्लम्स से आते हैं। ये मजदूर अपने पूरे परिवार के साथ इस काम में जुटते हैं। होता यह है कि तोड़ाई के बाद उत्तम क्वालिटी की लीचियों की सप्लाई हो जाती है और खराब तथा कटी-फटी लीचियां

रह जाती हैं। दो दो दिन के भूखे प्यासे बच्चे अलस्सुबह ही खाली पेट इन्हीं कटी-फटी लीचियों से अपना पेट भरने में लग जाते हैं। कहा जा रहा है कि चमकी बुखार के पीछे मुजफ्फरपुर की लीचियां हैं। यह पूंजीपतियों और कंपनियों की पोषक सरकारों का साजिशाना बयान है। इस तरह मुजफ्फरपुर की पौष्टिक लीची और उसकी परंपरा पर प्रश्न खड़ा करके लीची के बागान और लीची आधारित अर्थव्यवस्था को आम आदमी के हाथ से छीनने का कुत्सित प्रयास हो रहा है। रमेश पंकज व्यवस्था के सामने सवाल खड़ा करते हैं। वे पूछते हैं कि ‘कटा-फटा और बासी हो तो कोई भी फल नुकसान ही करता है। फिर लीची पर ही सवाल क्यों? कोई यह बताये कि प्रभावित इलाकों में किसी ने पानी का सैम्पल टेस्ट करवाया है? किसी ने यह पता किया है कि आखिर उन बच्चों के परिवार में हेल्थ और हाइजिन का क्या स्तर है? क्या उनके परिवार में भूख और कुपोषण से लड़ने की क्षमता है? ऊंचे तापमान को बर्दाश्त करने के लिए पेट का भरा रहना भी जरूरी है, क्या उनके पेट में पर्याप्त अनाज जाता है? क्या प्रभावित बच्चे पोषित, स्वच्छ, ताजा और प्रचुर मात्रा में भोजन ले रहे हैं? क्या वहां गंदे पानी का अविरल निकास होता है? क्या बच्चे मच्छरदानी के अंदर सोते हैं? क्या रोजाना कपड़ों को धोकर पहनने के संसाधन वहां मौजूद हैं? शौच घर के बाहर और घर के पास ही कर लेते हैं या वहां शौचालय है? खाना कहां और कैसे बनता है? ये जरूरी सवाल क्या उठते हैं हमारे समाज और सरकार के बीच? डाक्टरों के बीच कमतर उठेंगे यह सवाल क्योंकि उन्हें समाज विज्ञान पढ़ाया नहीं जाता। वे चिकित्सा विज्ञान से ओतप्रोत विद्वान हो सकते हैं, जहां शरीर का सिर्फ भौतिक स्तर मान्य है। वे सिर्फ खून, पेशाब, हड्डी, कफ, बलगम, फेफड़े, सीने, किडनी की जांच और उसकी दवाएं भर ही

जानते हैं। मौलिक कारणों की ओर, जो हमें बीमार बनाते हैं, उस ओर कौन जायेगा? सरकार भी तभी जागती है जब उसके बहरे कान के पास जाकर जोर-जोर से चिल्लाया जाता है। एक और दिक्कत है, राजनेता अपने को सर्वज्ञानी भी समझ लेते हैं सो उन्हें अगल-बगल से दूर की सलाह लेने में संकोच होता है। पर हम क्यों संकोच करें? हम खोलें अपने-अपने ज्ञान कौशल के पते। देखें कि इसका कारण आखिर क्या है। सुना गया है कि गोरखपुर चिकित्सा महाविद्यालय ने ऐसी पहल की है। वहां भी पिछले वर्ष आईएस के काफी मरीज थे। उन्होंने जांच करायी। जहां के बच्चे मर गये उस इलाके के कई जल-स्रोत दूषित था। चापाकलों को चिन्हित किया गया। लाल निशान लगाये गये। उनका पानी पीना मना कर दिया गया। शासन ने कठोर कदम उठाये। सुना है कि वहां अब आईएस की दस्तक कमजोर पड़ गयी है। पर्यावरण असंतुलन, खाद्य पदार्थों का जहरीलापन, खेती में प्रयोग किये जा रहे कीटनाशक, खाद यह सब भूमि के प्रथम तल के पानी को दूषित करता है। इसी तल का पानी औसत गरीब परिवार के लोग पीने को मजबूर होते हैं। मौसम में बदलाव, तापमान में अस्थिरता, यह सब हमारी प्रकृति के साथ छेड़छाड़ का नतीजा है, हमें हर कीमत पर प्रकृति का संपूर्ण प्रतिरक्षण करना होगा।

हम उस दौर में जी रहे हैं, जब किसी मंत्री, मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री की चुनावी सभा के लिए एसी, कूलर आदि अति आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न मंच और पंडाल 24 घंटे में तैयार कर दिये जाते हैं लेकिन कैसी विडम्बना है कि मरते हुए इन बच्चों की जिन्दगी बचाने के लिए पर्याप्त साफ सफाई से युक्त बेड, वार्ड और अस्पताल तक मुहैया नहीं कराये जा सके। बिहार के मुख्यमंत्री ने विधानसभा में अपनी सरकार की यह अव्यवस्था स्वीकार भी की है लेकिन इसके बावजूद यह सच्चाई अपनी जगह पर है कि देश के नौनिहाल निरर्थक मौत मरते रहे और जिम्मेदार लोग पूरी संवेदनहीनता के साथ अपने वीवीआईपी दायरों में कैद रहे और बाहर

निकलकर इनकी खोज खबर नहीं ले सके। रमेश पंकज कहते हैं कि—‘हम वैज्ञानिक युग में विज्ञान से सबक नहीं लेते, सिर्फ और सिर्फ उसके गुलाम हो गये हैं। हर वर्ष बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, चिकित्सकों का काफिला यहां आता है। खून के सैम्पल की जांच देश-विदेश तक की प्रयोगशालाओं से बिना किसी टिप्पणी या निष्कर्ष के वापस आ जाती है—जो कुछ आती भी है वह आम आदमी की खोपड़ी से बाहर की बात होती है। जन-जीवन से उसका लगाव बेहद कम होता है। कोई वर्ष के आने भर से राहत हो जायेगी की आस में है, कोई विदेश में अनुसंधान से समस्या मिटने की आस में है। सरकार के लोग आश्वासन देकर जिम्मेवारी का निर्वाह कर लेते हैं। नेताओं की फोटो खिंचवा कर अखबारों में प्रकाशित होने की बेसब्री मासूमों की जान बचाने के काम नहीं आ सकती। दरअसल हम लकीर के फकीर बनते चले जा रहे हैं और अपने लोकज्ञान की जगह आयातित ज्ञान पर ज्यादा भरोसा करने लगे हैं।

जब से यह बीमारी शुरू हुई है तब से प्रभावित इलाकों में आज की तारीख तक सरकार अथवा अन्य सामाजिक संगठनों द्वारा जागरूकता का कोई अभियान कभी नहीं चलाया गया, न ही स्वास्थ्य सेवाओं को सक्षम और उत्तरदायी बनाया गया। इस कहर के मूल कारणों को खोज में चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञ लगे हैं लेकिन अब तक किसी नतीजे तक नहीं पहुंच पाये हैं। इसलिए अभी तक इसका चिकित्सकीय और प्रामाणिक उपचार स्थिर नहीं हो पा रहा है। दूसरी ओर समाज विज्ञान की दृष्टि से अब तक किसी भी प्रकार की पहल नहीं हुई है। यह प्रथम वर्ष (2019) है कि सामाजिक क्षेत्र के लोगों ने इस मुद्दे को लिया और सड़क पर उतरे हैं। किन्तु इस बीमारी के पीछे सामाजिक-आर्थिक कारणों और समाधानों की ओर अभी तक दृष्टिबोध नहीं बन पा रहा है।’

रमेश पंकज कहते हैं कि सन् 2014 में हम लोगों के द्वारा एक स्थानीय पहल हुई, क्षेत्रों का दौरा किया गया और यह पाया गया कि इन मामलों में जितना बड़ा प्रश्न चिकित्सा विज्ञान

की खोज का है, उससे ज्यादा बड़ा प्रश्न सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण और समाधान के रास्ते ढूंढने का है। प्रभावित क्षेत्रों का सामाजिक व आर्थिक अध्ययन करना-कराना जरूरी है ताकि हम मूल कारणों तक पहुंच सकें और उससे निपटने का रास्ता ढूंढ सकें। प्रभावित इलाकों में महिलाओं का समर्थ और सक्षम संगठन खड़ा करना और उसे क्रियाशील बनाये रखना बेहद जरूरी है ताकि सरकार की लोक कल्याणकारी योजनाएं जमीन पर उतारी जा सकें।

आज जरूरत है शुद्ध स्वच्छ पानी, स्वच्छ शौचालय, पोषित आहार, गंदे पानी का अविरल निकास और उसका उपचार, पर्यावरण के साथ बेहतर तालमेल, हमारे खान-पान के व्यवहारों में स्वच्छता का समावेश और चिकित्सा सुविधाओं की त्वरित पहुंच। इस संबंध में लोकशिक्षण की गरज से प्राथमिक और उच्च विद्यालयों में लोक-ज्ञान और जीवन कला की कक्षाएं भी होनी चाहिए।

मुजफ्फरपुर के उन इलाकों में तत्काल पानी की जांच, पर्यावरणीय परिस्थिति की जांच, भूख कुपोषण का स्तर, उनके रहन-सहन की वास्तविकता की पड़ताल जरूरी है। हम जानते हैं कि गंदा पानी, गंदा पर्यावरण और भूख-कुपोषण ही आईएस की मुख्य वजह है। जरूरत है सिर्फ ईमानदारी से पहल करने की और गहराई में जाकर इसके विरुद्ध जंग छेड़ने की।

—प्रेम प्रकाश

‘सर्वोदय जगत’
के सभी सुहृद पाठकों,
शुभचिन्तकों, लेखकों से
अनुरोध है कि
अपने महत्वपूर्ण आलेख,
रचनाएं, विचार एवं
सुझाव पत्रिका के लिए
भेजें। —सं.

बा : भारत वापसी

□ गिरिराज किशोर



पहला गिरिमिटिया जैसा चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। उनके बारे में उपलब्ध जानकारियां नहीं के बराबर हैं। 'पहला गिरिमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है—पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का अगला अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहा है।

सुभाषचंद्र बोस लंदन से लौटे तो बापू से मिलने सेवाग्राम गये। तब लंदन से पढ़कर आने वाले अधिकतर युवा बापू से मिलने के इच्छुक रहते थे। बोस युवा थे, लंदन से लौटे थे, चाय पीने की आदत थी। आश्रम में चाय वर्जित थी। जब तक वे आश्रम में रहे, बा उनको चुपचाप रसोई में बैठाकर रोज चाय पिला देती थी। एक दिन बापू आये तो बा सुभाष के लिए चाय बना रही थी। बापू बोले, 'तुम आश्रम के नियम का उल्लंघन कर रही हो?'

बा ने बिना कुछ जवाब दिये चाय का गिलास सुभाष की तरफ बढ़ाते हुए कहा, 'पियो।'

बा ने बापू से कहा, 'ये नियम आश्रमवासियों के लिए हैं। सुभाष मेहमान है। यह अधिकार मेरा है कि मैं मेहमान की सुविधा के अनुसार उसके खाने-पीने का प्रबंध करूं।' बापू चुपचाप चले गये।

उस समय भी बापू के चेहरे पर वही भाव रहा होगा जो बापू की मर्जी के विरुद्ध अरुण को संतरे का रस पिलाते हुए आया था।

जब आश्रम संवासियों को आश्रम के नियम पालन कठिन लगते थे, तब बा ही वह न्यायालय थी, जहां वे फरियाद लेकर जाते थे। काका कालेलकर कहा करते थे कि बा वहां हर किसी की मां थी, प्यार और दया की प्रतिमूर्ति थी। वह अक्सर आश्रमवासियों के लिए नियमों का उल्लंघन करती थी। अंत में बापू को बा के सामान्य तर्कों के सामने हारना पड़ता था। बापू

यही कह देते कि सेवा भाव नियमों के प्रतिबंध से ऊपर है। बा अपना रास्ता अपने आप बना रही थी। लोगों के मन से यह भ्रम दूर हो रहा था कि बापू का आदेश बा के लिए पत्थर की लकीर है। इस बीच बा अखबार पढ़ने लगी थी।

एक बार मोतीलाल नेहरू आश्रम में अचानक पहुंच गये। बापू ने उन्हें स्वयं खाना बनवाकर खिलाया। दरअसल चौबीस-पच्चीस आश्रमवासियों को खाना खिलाकर बा लेट गई थी। तभी मोतीलाल नेहरू दो-तीन साथियों के साथ आ गये। बापू एक आश्रम संवासी को साथ लेकर रसोई में खाना बनवाने लगे। एकाएक उस संवासी के हाथ से थाली छूट गई। बा अपनी रसोई के बारे में सोते हुए भी सचेत रहती थी। उसे लगा, रसोई में बिल्ली घुस गई। हड़बड़ाकर कहती हुई दौड़ी, कौन है कौन है...। देखा तो संवासी था।

बा ने पूछा, 'तुम यहां क्या कर रहे हो?' 'मेहमान आये हैं, बापू के साथ खाना बनवा रहे थे।'

'मुझे क्यों नहीं बुलाया?'

'बापू ने मना कर दिया था कि अभी तो बा थककर लेटी हैं।'

मोतीलाल नेहरू के जाने के बाद बा ने बापू से सवाल किया, 'आपने मुझे जगाने को क्यों मना कर दिया था, ऐसा मुझे क्या हो गया था कि मुझे जगाना संभव नहीं था?'

बापू ने एक बच्चे की तरह दूसरी तरफ देखते हुए कहा, 'मुझे तुमसे डर लगता है।'

बा को हंसी आ गई, -ओ...हो, तो तुम मुझसे इतना डरते हो।' बापू ने वह बात पूरी गंभीरता के साथ कही थी, बा ने हंसकर टाल दी।

सेवाग्राम में नानावती नाम का एक व्यक्ति संगीत सिखाता था। एक दिन वह एक छात्रा को नई तान सिखा रहा था। वह सीख नहीं पा रही थी। उसने कई बार सिखाने की कोशिश की, वह बार-बार गलती कर देती थी। बा सुन रही थी। सुनने मात्र से बा तानें सीख गई थी। बा ने उस छात्रा की कमियां सुधार दीं।

बाबला महादेव भाई के बेटे नारायण देसाई का घर का नाम था। बाबला रामचरित मानस सीखने बा की कुटिया के सामने से निकलता था। एक दिन व सीखकर लौट रहा था। बा ने पुकारा, 'बाबला, कहां से आ रहे हो?'

'मानस पढ़ने गया था, बा।'

'मैं भी पढ़ूंगी।'

'मैं गुरु जी से कह दूंगा, आकर सिखा जाया करेंगे।'

'तू ही सिखा दिया कर।'

'मैं तो स्वयं ही सीख रहा हूं...'

जितना तू सीखकर आयेगा, उतना ही मुझे सिखा देना। तेरा पाठ भी दोहराया जायेगा, मैं भी सीख जाऊंगी। जीवन सीखने के लिए होता है। जहां से मिले, सीखो।'

बाबला को मानना पड़ा। वह पहले डरा, फिर सिखाने लगा। जितना सीखता था, उतना बा को सिखा देता था।

सेवाग्राम से छह मील दूर एक आश्रम

था, जिसमें बापू के आदर्शों के अनुरूप भटकी हुई महिलाओं को आत्म निर्भर बनाने के उद्देश्य से प्रशिक्षण दिया जाता था। जब बापू उसके पड़ोस में आ गये तो वे प्रशिक्षु महिलाएं बापू के हर जन्मदिन पर पैदल चलकर आती थीं। पूरे दिन आश्रम में ही रहती थीं। ऐसे ही हमेशा की तरह उन्होंने एक जन्मदिन पर बापू को लिखा कि वे सब बापू का आशीर्वाद लेने आयेंगी। बापू ने जवाब दिया कि उनका स्वागत है पर वे सब अपना-अपना खाना लेकर आयें। उनका स्वागत कुएं के जल से ही करना संभव होगा। बापू नहीं चाहते थे कि आश्रम का खर्च बढ़े। महिलाओं ने सवरे जल्दी-जल्दी उठकर खाना बनाया और छह मील पैदल चलकर ठीक प्रार्थना के समय पर पहुंच गईं।

संवासी प्रार्थना के बाद अपने-अपने काम में लग गये। दोपहर को महिलाएं कुएं पर जाकर नहाईं। जब वे अपना भोजन कर रही थीं तो बा आ गयी, पूछा, 'आप लोग यह क्या कर रही हैं, आश्रम के साथियों के साथ मिलकर क्यों नहीं खा रही?'

उन्होंने बापू के पत्र के बारे में बताया। उनके मुंह से अनायास निकला, 'यह क्या मूर्खता है?'

बा उन्हें अपने साथ ले गयीं। आने-जाने वालों के लिए मिठाई आदि जो उनके पास थी, सब उन महिलाओं में बांट दी। फिर रसोई खुलवाई। उसमें मूंगफली, मट्ठा और शीरा आदि जो मिला, वह सब मेहमानों को परोस दिया। उसी समय बापू वहां से निकले। उन्होंने पूछा, 'यह क्या हो रहा है?' बा ने उनको उत्तर देने से पूर्व लताड़ा, 'आश्रम इतना दरिद्र भी नहीं है कि वह चंद मेहमानों की खातिर भी न कर सके।'

'लेकिन मैंने तो यहां आने से पहले ही इन लोगों को लिख दिया था, फिर इस सबकी क्या जरूरत थी।'

'तुम्हें जो लिखना हो, लिखते रहो।' बा ने हंसकर कहा, 'इस समय ये लड़कियां मेरे बरामदे में बैठी हैं। मेरी मेहमान हैं। मैं इनकी मेजबान हूँ। मेरा कोई मेहमान बिन खाये नहीं जाता।' बापू चुपचाप मुस्कराते हुए चले गये।

बापू को रक्तचाप रहने लगा था। उसमें अस्थिरता थी। सेगांव की ठंड कटखनी मानी जाती थी। बापू को कमरे में सोना दमघोंटू लगता था। इसलिए वे बरामदे में सोते थे। जब रक्तचाप ठीक नहीं हुआ तो डॉक्टर को बुलाना पड़ा। डॉक्टर का कहना था कि बापू को अपनी तबीयत ठीक करनी है तो कमरे के अंदर सोना होगा। उनके सामने समस्या थी कि वे कहां जायें, किसको उसके कमरे से बेदखल करें। उनके असमंजस को देखकर मीराबेन ने अपनी कुटिया खाली करनी शुरू कर दी। बापू किसी को विस्थापित करने के पक्ष में नहीं थे। वे इस बात से नाराज हो गये। लेकिन शाम की प्रार्थना के बाद बा ने कहा, 'किसी को परेशान होने की आवश्यकता नहीं, आज से बापू मेरे साथ मेरी कुटिया में रहेंगे।'

मामला क्षण-भर में सुलझ गया। बापू चाहकर भी कुछ नहीं कह पाये। पति-पत्नी इतने समय के बाद एक ही छत के नीचे आ गये थे। उस रात बापू आराम से सोये। इस उम्र में पति-पत्नी एक दूसरे के लिए सबसे बड़ी आश्चर्य होते हैं।

अगले दिन से दर्शनार्थियों और मिलने वालों की भीड़ लगने लगी। बापू इस बात से परेशान होते और कहते भी थे, 'बेचारी बा! मैंने स्वयं बा की कुटिया का अपनी देखरेख में इसलिए निर्माण कराया था कि उसे आराम और एकांत मिल सके। लेकिन मैंने ही उस पर अधिकार जमा लिया। जहां जाता हूँ, वही जगह जन-शयनागार में बदल जाती है। मुझे भले ही दुःख हो पर बा को कभी कोई शिकायत नहीं होती। भले ही मैं उस पर बड़ी से बड़ी जिम्मेदारी लाद दूँ, चाहे कुछ भी करने को कह दूँ...।'

यह बात वे बा की अनुपस्थिति में मिलने वालों से ही कहते थे। एक रोज जब वे किसी से यह सब कह रहे थे तो बा ने सुन लिया। बा की हंसी फूट पड़ी, और लोग भी हंसने लगे। बा-बापू का यह समन्वय का समय था।

बा बापू के साथ तभी कहीं जाती थी, जब उनका स्वास्थ्य नरम-गरम होता था। अन्यथा वह अपने काम में खुश रहती थी। वसंत के करीब बा को पता चला कि बापू को

उड़ीसा में किसी मीटिंग के लिए देबांग जाना है। बा ने भी उनके साथ जाने की इच्छा व्यक्त की। सुशीला, मणिलाल की पत्नी, और दुर्गाबेन, महादेव भाई की पत्नी भी बा के काफिले में सम्मिलित हो गये। दरअसल सबसे बड़ा आकर्षण था जगन्नाथ पुरी, भारत के चार पवित्र तीर्थ स्थलों में से एक। तीनों में से किसी ने भी जगन्नाथ जी के दर्शन नहीं किये थे। उनके दर्शन करने की तीनों की इच्छा थी। सबको मालूम था कि उस मंदिर में हरिजनों का प्रवेश प्रतिबंधित है। बापू का आदेश था कि ऐसे मंदिरों में स्वाभिमानी हिन्दू न जायें, जहां हरिजनों का प्रवेश वर्जित हो। बा इस बात को जानती थी। उन्होंने स्वयं मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश के लिए आंदोलन किया था।

देबांग पहुंचने के बाद बापू राजनीतिक कार्यों में इतने व्यस्त हो गये कि उन्हें साथ आने वालों की भी सुध नहीं रही। बा, सुशीला और दुर्गाबेन अन्य महिलाओं के साथ सवरे ही जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए निकल पड़े। उस समय न बापू ने कुछ पूछा और न उन लोगों ने कुछ बताया। बापू समझे कि भ्रमण आदि के लिए गये हैं। यह भी सोचा बा साथ है, वह जानती है कि वे लोग अगर जगन्नाथ मंदिर के पास भी जाकर खड़े हो गये तो सत्याग्रह हो जायेगा। लेकिन बा वहां पहुंचकर दो हिस्सों में बंट गयी। एक तरफ परंपरागत हिन्दू संस्कार, दूसरी तरफ वह नई सोच, जिसे बापू देश के लोगों को बांट रहे थे। बा की धार्मिक भावना सामाजिक दायित्व पर भारी पड़ी। उनके पांव स्वतः मंदिर की तरफ चल पड़े। दुर्गाबेन पीछे-पीछे चल पड़ी। सब लोग चकित थे।

सुशीला ने बहू होते हुए, जोर से कहा, 'बा, अंदर मत जाइये, इस मंदिर में हरिजनों का प्रवेश वर्जित है। बापू विरोध में हैं।' यह बात उन्होंने बहुत संकोच के साथ कही थी। वह समझ रही थी कि मंदिर में बा का प्रवेश तूफान ला देगा।

बा को जैसे कोई अंदर की तरफ खींच रहा था। वह यह कहती हुई चली गयी, 'मैं जानती हूँ, पहली बार आई हूँ। पता नहीं फिर कभी आना हो न हो।'...*क्रमशः अगले अंक में*

महाराष्ट्र गन्ने की मिठास में आंसुओं का स्वाद!

बिहार में बच्चों की मौतों का शोर अभी गूँज ही रहा था कि इसी बीच महाराष्ट्र से एक बेहद डरावनी खबर आई, जिसने देश भर को भीतर तक झकझोर कर रख दिया. 2016 से 2019 के बीच, महाराष्ट्र के बीड में 4605 खेतिहर मज़दूर औरतों के गर्भाशय निकालने की खबर सुनकर देश दहशत और आक्रोश से भर उठा। इनमें से ज्यादातर महिलाओं की उम्र 25 से 30 साल के बीच बताई जा रही है. सवाल है कि ये खबर क्या सिर्फ रोज़मर्रा की एक खबर भर है? जी नहीं, ये खबर सवाल खड़े करती है मसलन गन्नों के खेतों में काम करने वाली इन महिलाओं के गर्भाशय क्यों निकाले गये? किन अस्पतालों में किन सुविधाओं के बीच ये सर्जरी हुई? इस तरह की सर्जरी के बाद इन मज़दूर महिलाओं की सेहत पर क्या असर पड़ा?

ताज़ा खबर के मुताबिक राज्य सरकार ने स्वास्थ्य विभाग के प्रमुख सचिव की अध्यक्षता वाली एक समिति बनाकर इस मामले की जांच के आदेश दे दिए हैं. लेकिन, ये जानकर आपको हैरत हो सकती है कि ये कदम महिलाओं को सिर्फ इसलिए उठाना पड़ा है ताकि कुछ रुपयों का नुकसान न हो. इन आंकड़ों के पीछे गरीबी और जागरूकता के अभाव की ऐसी कुरूप तस्वीर है, जो हम देखने से कतराते हैं.

महाराष्ट्र के गन्ना उत्पादन के क्षेत्र में हज़ारों की संख्या में औरतें खेतिहर मज़दूर के तौर पर काम करती हैं. इनके घरों के पुरुष भी साथ मिलकर गन्ने की कटाई का काम करते हैं। खेतों के ठेकेदार पुरुष और महिला के एक जोड़े को एक इकाई यानी एक मज़दूर मानते हैं. मराठवाड़ा का ये इलाका चूँकि पिछड़ा है इसलिए यहाँ गरीबी, अशिक्षा और जागरूकता के अभाव जैसी समस्याएँ हैं. मराठवाड़ा और आसपास से बहुतेरे परिवार अक्टूबर से मार्च तक यानी छह महीनों के लिए मज़दूरी करने आते हैं ताकि साल भर की रोज़ी रोटी का बंदोबस्त हो सके.

खबरों के मुताबिक ठेकेदार प्रति टन गन्ना कटाई पर एक मज़दूर जोड़े को 250 रुपये देते हैं. एक जोड़ा औसतन एक दिन में 3 से 4 टन गन्ने की कटाई करता है यानी 750 से 1000 रुपये तक कमा पाता है. एक नियम ये

है कि अगर जोड़े में से किसी एक महिला या पुरुष ने भी किसी दिन छुट्टी ली, तो उसे 500 रुपये का जुर्माना ठेकेदार को देना पड़ता है.

महिलाओं के गर्भाशय की सर्जरी के पीछे मेहनताने का नुकसान और जुर्माने का यही नियम है. अब तो खेत के मालिक या ठेकेदार ऐसी महिलाओं को काम ही नहीं देते हैं, जिन्हें मासिक धर्म होता है क्योंकि ऐसे में महिलाएं हर महीने कुछ दिनों की छुट्टी के लिए मजबूर होती हैं. इसी तरह की मुश्किलों के चलते हालात ये बन चुके हैं कि अगर किसी महिला को मज़दूरी करनी है, तो उसे मासिक धर्म से निजात पाना पड़ता है. इसके लिए एकमात्र यही रास्ता सुझाया जाता है और महिलाएं यूटरस रिमूवल सर्जरी करवा लेती हैं.

इन मज़दूर महिलाओं और परिवारों को खेतों के पास ही बने किसी टेंट में इस काम के चलते छह महीने गुज़ारने होते हैं. यहाँ शौचालयों की व्यवस्था नहीं होती. ज़ाहिर है, ऐसे में पीरियड्स होने पर महिलाओं की मुश्किल कई गुना बढ़ जाती है. एक और भयानक कारण भी है. कुछ मज़दूर औरतों ने ये भी बताया कि ठेकेदारी से जुड़े लोग बार बार इनका यौन शोषण करते हैं. ऐसे में अन्य समस्याओं से निजात पाने के लिए भी यूटरस रिमूवल का रास्ता चुनना इनकी मजबूरी होती है.

इन महिलाओं का कहना है कि यूटरस रिमूवल सर्जरी के लिए 30 से 35 हज़ार रुपये का खर्च होता है और इसके लिए उन्हें कर्ज लेना ही पड़ता है, भले ही कुछ रकम परिवार खुद भी अर्पण कर ले. दूसरी बात, ये कर्ज किसी बैंक या संस्था से नहीं बल्कि ठेकेदार या साहूकार जैसे किसी व्यक्ति से ही मिलता है, इसलिए इस पर ब्याज भी लगता रहता है. इस कर्ज को चुकाना भी इन महिलाओं के लिए टेढ़ी खीर बन जाता है क्योंकि कर्जदार महिला को कई तरह का बर्ताव भी बर्दाश्त करना होता है.

महिला मज़दूरों की यूटरस रिमूवल सर्जरी बीड और उसके आसपास के ही प्राइवेट डॉक्टर कर रहे हैं. महिलाओं की सेहत के मुद्दे पर काम करने वाले एनजीओ का एक समूह सरकार से गुहार लगा चुका है कि इस तरह की सर्जरी करने वाले रैकेट पर लगाम लगाई जाए. हैरत की एक बात ये भी है कि डॉक्टरों और गन्ने के कारोबारों के बीच मिलीभगत रहती है।

डॉक्टर मासिक धर्म के लक्षणों को कैसर का खतरा बताकर 25 से 30 या 35 साल उम्र की इन महिलाओं को डराकर इस सर्जरी के लिए मजबूर कर देते हैं. कुछ पीड़िताएं तो ऐसी भी हैं, 19-20 साल की उम्र में ही जिनका गर्भाशय निकाल दिया गया. इस सर्जरी के बारे में गायनेकोलॉजिस्ट डॉ. गीतिका दरबारी कहती हैं कि महिलाओं को सामान्य तौर पर 40 साल की उम्र के पहले गर्भाशय निकालने की सर्जरी नहीं करवाना चाहिए. शिशु को जन्म देने संबंधी कारण के अलावा अहम ये भी है कि अगर 40 की उम्र के पहले ये सर्जरी होती है तो रजोनिवृत्ति यानी पोस्ट मैनोपोज़ लक्षण पहले ही आ जाते हैं. चूँकि हॉर्मोनल संतुलन के लिए यूटरस ज़रूरी होता है इसलिए इसके न होने के कारण नर्वस सिस्टम संबंधी समस्याएं और शरीर के कई हिस्सों में दर्द की शिकायतें होने लग जाती हैं.

गर्भाशय निकाले जाने की सर्जरी इमरजेंसी की स्थिति में ही की जानी चाहिए. यहाँ इमरजेंसी का मतलब कुछ मेडिकल स्थितियों से है जैसे पैप स्मियर या सर्वाइकल कैसर की जांच में अगर नाजुक स्थिति पता चले, यूटरस बाहर आ गया हो यानी प्रो लैप्स स्थिति हो और मासिक धर्म से जुड़ी कोई गंभीर समस्या हो तभी। यूटरस रिमूवल सर्जरी के बाद खून की कमी, हॉट फ्लैचेज़, खून का थक्का जम जाना व संक्रमण जैसे खतरे तुरंत पैदा हो सकते हैं और लंबे समय में पेलविक प्रो लैप्स का खतरा बढ़ता है. चूँकि हार्मोनल संतुलन भी बिगड़ता है इसलिए शरीर के कई हिस्सों में लगातार दर्द रहने के बाद धीरे धीरे खतरनाक हो सकता है.

गन्ने के कारोबार में करीब 14 लाख मज़दूर काम करते हैं और कर्नाटक की महिला मज़दूर भी ऐसी समस्याओं से जूझ रही हैं. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग स्वतः संज्ञान लेकर कर्नाटक और महाराष्ट्र सरकारों को नोटिस भेज चुका है. गन्ना ठेकेदारों और स्थानीय अस्पतालों व डॉक्टरों के बीच एक बड़ा रैकेट चल रहा है, जिसकी भेंट ये मज़दूर महिलाएं चढ़ रही हैं. आशंका यह भी है कि इस धंधे के तार मानव अंग तस्करी से भी जुड़े हो सकते हैं, लेकिन इसकी अब तक पुष्टि नहीं हुई है. (अखबारों की कतरन से)

सलीब पर नेहरू नोचे जा रहे हैं इतिहास के गौरवशाली पने

—पीयूष बबेले

जब जब नेहरू का जिक्र आता है तो मुझे यूनान के एक पुराने देवता प्रोमीथियस, जिसे हिंदी में प्रमथ्यु भी कहते हैं, की कथा याद आती है। प्रोमीथियस स्वर्ग से धरती को देखता था। नीचे देखता तो इंसान बड़ी बदहाली में दिखाई देता। कभी उसके बच्चों को जंगली जानवर खा जाते, तो कभी वे जाड़े से मर जाते। देवताओं की तरह दो पांवों पर चलने वाला यह प्राणी सारे चौपायों से गया गुजरा नजर आता।

तब प्रोमीथियस को एक युक्ति सूझी। उसने देखा की स्वर्ग में आग है। इस आग ने देवताओं को बहुत से सुख, शक्ति और सुरक्षा दी है। अगर यह आग किसी तरह धरती पर इंसान के पास पहुंचा दी जाए, तो इंसान अपनी बहुत सी पीड़ाओं से मुक्त हो जाएगा।

आग पर स्वर्ग और देवताओं का कॉपीराइट था। प्रोमीथियस क्या करता। उसने स्वर्ग से आग चुरा ली। चुपके से आग धरती पर इंसानों को दे आया। आग मिलते ही इंसान की रातें रोशन हो गईं, उसका भोजन पकने लगा, जंगली जानवर उससे डरने लगे। धरती पर सुख की ऊष्मा पसरने लगी। सुख आया तो देवताओं की चाकरी बंद होने लगी। मनुष्य अब उन्हें कम अर्घ्य चढ़ाने लगा।

देवताओं ने जांच की तो पता चला कि देवताओं की बपौती आग, धरती पर पहुंच चुकी है। आदमी आत्मनिर्भर हो रहा है। यह पता लगते भी देर न लगी कि आग प्रमथ्यु ने धरती तक पहुंचाई है। प्रमथ्यु को बंदी बनाकर देवताओं के राजा के सामने पेश किया गया। हर कोई उसे कड़ी सजा देना चाहता था। ज्यादातर तो मृत्युदंड ही चाहते थे। लेकिन मृत्युदंड संभव नहीं था, देवता अमर होते हैं, वे भला कैसे मरें।

तब यूनान के इंद्र ने एक ज्यादा

खतरनाक सजा सोची। प्रमथ्यु को स्वर्ग से निकालकर जमीन पर लाया गया। वहां इंसान की बस्ती के पास कम ऊंची पहाड़ी पर उसे सलीब पर टांग दिया गया। ठीक वैसे ही जिस तरह ईसा मसीह की सलीब पर टंगी तस्वीर हम देखते हैं। उसके शरीर में टुकी कीलों से रक्त की धारा बह निकली। प्रोमीथियस असहनीय वेदना में टंगा हुआ था। फिर उसके कंधे पर एक गिद्ध बैठाया गया। यह गिद्ध दिनभर जीवित प्रमथ्यु का मांस नोचकर खाता। रात में जब गिद्ध सोता तो प्रमथ्यु का मांस फिर से भर जाता क्योंकि वह अमर देवता था। सुबह से गिद्ध फिर वही क्रम शुरू कर देता।

प्रमथ्यु की चीखें इंसानों की बस्ती तक पहुंचती रहतीं। सुबह की पहली किरण के साथ बस्ती वाले उस पहाड़ के नीचे पहुंच जाते। वे दिनभर प्रमथ्यु की चीखों को तमाशे की तरह देखते और शाम को फिर अपने घर आ जाते।

जिन मनुष्यों के लिए सलीब पर टंगा प्रमथ्यु अपना मांस नुचवा रहा था और असहनीय पीड़ा झेल रहा था, वे उसकी लाई आग से आगे बढ़ रहे थे और उसकी बेबसी का उत्सव मना रहे थे।

कथा यहीं समाप्त होती है। लेकिन कथा में बताई बात कभी खत्म नहीं होती। वह हर महापुरुष पर लागू होती है, जिसे गोली से नहीं मारा जा सका। लिंकन और गांधी सौभाग्यशाली थे कि उन्हें गोली से मार दिया गया। नेहरू अभागे थे, जो मरते दम तक देश की सेवा करते रहे। जब तक वे सेवा कर रहे थे, जब तक वे स्वर्ग की आग भारत तक ला रहे थे, तब तक वे बहुत लाड़ले थे। उनके जाने के बाद हमने उनके पूरे किरदार को सलीब पर टांग दिया और अब गिद्ध की तरह उसे नोच रहे हैं।

पहाड़ी के नीचे खड़े होकर उनकी पीड़ा

का तमाशा देखने का सिलसिला अब इतना लंबा हो गया है कि तमाशाइयों की नई पीढ़ी यह भूल ही गई है कि इस शख्स को किस बात की सजा दी जा रही है। नेहरू का जुर्म यही था कि जब अंग्रेजी राज में वह सारे सुख भोग सकता था, तब वह बागी हो गया। जब नौजवान ही था तब उसने जलियांवाला बाग हत्याकांड की रिपोर्ट विस्तार से तैयार की। वह उन चंद लोगों में था जो लोकमान्य तिलक की अंतिम यात्रा में गांधी के साथ चल रहे थे। वह उन लोगों में था जिसके प्रभाव में आकर उसके पिता ने अपना घर-मकान सब कांग्रेस को दे दिया था। वह उन लोगों में था जो पहली बार अपने पिता के साथ जेल गया था। वह उन लोगों में था जो सरदार भगत सिंह से मिलने जेल गया था और भगत सिंह की रिहाई के लिए अंग्रेजों से लड़ रहा था। कांग्रेस के अंदर वह सुभाष चंद्र बोस का सच्चा दोस्त था। अपनी पत्नी कमला की मौत के बाद उनकी चिता की एक चुटकी राख वह जीवन भर अपने साथ रखता रहा। महात्मा गांधी के अंतिम उपवास में चुपचाप खुद भी उपवास करने वाला वह विरला प्रधानमंत्री था। जब वह संसद में भाषण दे रहा था, तब उसके दिमाग में लाहौर के वे हिंदू मुहल्ले चल रहे थे, जहां का पानी काट दिया गया था।

वह इतना बुरा था कि जब दुनिया बमों के ढेर पर बैठी थी, तब भी शांति की बात करता था। उसकी शांति का ऐसा जलवा था कि कोरिया के गृहयुद्ध को अंततः उसी ने एक समझौते पर पहुंचाया था। वह पूरी दुनिया में सम्मानित था और रहेगा। लेकिन उसके घर में गिद्धों का गिरोह, उसकी वेदना से तब भी मनोरंजन कर रहा था, आज भी कर रहा है और आगे भी करता रहेगा।

—बीबीसी

गांधी जब खुद लिंग होने से बाल-बाल बचे

-अव्यक्त

अमरीकी फिल्म 'दी ग्रेट डिबेटर्स' में दिखाया गया था कि किस तरह काले लोगों के एक कॉलेज की टीम ने 1930 के दशक में हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के गोरे घमंडी डिबेटर्स की टीम को एक वैचारिक बहस में हराया था. इसी फिल्म में उस दौरान अमरीका के दक्षिणी राज्यों में गोरे अमरीकियों की भीड़ द्वारा काले अफ्रीकी अमरीकियों की जाने वाली हत्या या लिंग का मार्मिक चित्रण किया गया था. लिंग का कारुणिक संदर्भ में गोरे अहमबोध से ग्रस्त हार्वर्ड के डिबेटर्स को पराजित कर उनके मानवीय प्रबोधन के लिए काले डिबेटर बार-बार महात्मा गांधी के नाम और विचारों का सहारा लेते हैं. इस तरह पूरी फिल्म में 9 बार लिंग का और 11 बार गांधी का नाम लिया जाता है. याद रहे कि उस दौर में महात्मा गांधी यहां भारत में भी ऐसे ही मानवतावादी सवाल पर भारतीयों और ब्रिटिशों का एक साथ सामना कर रहे थे.

1931 में ही किसी ने महात्मा गांधी को एक चिट्ठी लिखी जिसमें अमरीका में किसी काले को भीड़ की ओर से जिंदा जला दिए जाने से संबंधित 'लिटरेरी डाइजेस्ट' में छपे समाचार की कतरन भी संलग्न थी. पत्र लेखक ने गांधी से कहा कि जब कोई अमरीकी अतिथि या भेंटकर्ता आपसे मिलने आए और आपसे अपने देश के लिए संदेश मांगे तो, आप उन्हें यही संदेश दें कि वे वहां भीड़ द्वारा काले लोगों की जानेवाली हत्याओं को बंद कराएं. 14 मई, 1931 को महात्मा गांधी ने इसके जवाब में 'यंग इंडिया' में लिखा कि 'ऐसी घटनाओं को पढ़कर मन अवसाद से भर आता है. पर मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि अमरीकी जनता इस बुराई के प्रति पूरी तरह से जागरूक है और अमरीकी जन-जीवन के इस कलंक को दूर करने की भरसक कोशिश कर रही है.

आज का अमरीकी समाज बहुत हद तक उस भीड़-हिंसा से सचमुच मुक्त हो चुका है, जिसका नाम ही लिंग-न्याय एक अमरीकी कैप्टन विलियम लिंग की प्रवृत्ति की वजह से पड़ा था. लेकिन उसके 90 साल बाद आज क्या दुर्भाग्य है कि हम भारत में भीड़ से हत्याओं की ऐसी ही प्रवृत्ति और घटनाओं पर चर्चा कर रहे हैं

और हमें फिर से गांधी याद आ रहे हैं. क्या संयोग है कि 1931 से 34 साल पहले 13 जनवरी, 1897 को खुद गांधी ही भीड़ के हाथों मारे जाने से किसी तरह बचाए जा सके थे.

दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर में लगभग 6000 अंग्रेजों की उत्तेजित भीड़ ने महात्मा गांधी को घेर लिया था. वह भीड़ अपने नेता द्वारा इस कृदर उत्तेजित कर दी गई थी कि वे गांधी को पीट-पीटकर मार डालना चाहते थे.

महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा और अन्य अवसरों पर भी विस्तार से इसका वर्णन किया है. पहले तो भीड़ ने गांधी पर पत्थर और सड़े हुए अंडे बरसाए. फिर किसी ने उनकी पगड़ी उछाल दी. उसके बाद लात और घूसों की बौछार शुरू हुई. गांधी लगभग बेहोश होकर गिर चुके थे. तभी किसी अंग्रेज महिला ने उनकी ढाल बनकर किसी तरह उनकी जान बचाई.

फिर पुलिस की निगरानी में गांधी अपने एक मित्र पारसी रुस्तमजी के घर पहुंच तो गए, लेकिन हज़ारों की भीड़ ने आकर उस घर को घेर लिया.

लोग तीखे शोर में चिल्लाने लगे कि गांधी को हमें सौंप दो. वे लोग उस घर को आग लगा देना चाहते थे. उस घर में महिलाओं और बच्चों समेत करीब 20 लोगों की जान दांव पर लगी थी.

वहां के पुलिस सुपरिंटेंडेंट एलेक्जेंडर गांधी के शुभचिंतक थे जबकि वे खुद भी एक अंग्रेज थे. उन्होंने भीड़ से गांधी की जान बचाने के लिए एक अनोखी तरकीब अपनाई.

उन्होंने गांधी को एक हिन्दुस्तानी सिपाही की वर्दी पहनाकर उनका रूप बदलवा दिया और किसी तरह थाने पहुंचवा दिया. लेकिन दूसरी तरफ भीड़ को बहलाने के लिए वे स्वयं भीड़ से एक हिंसक गाना गवाने लगे.

इसके बाद जब एलेक्जेंडर ने भीड़ को बताया कि उनका शिकार गांधी तो वहां से सुरक्षित निकल भागा है, तो भीड़ में किसी को गुस्सा आया, कोई हँसा, तो बहुतों को उस बात का यकीन ही नहीं हुआ.

लेकिन भीड़ के प्रतिनिधि ने घर की तलाशी के बाद जब भीड़ के सामने इस खबर की पुष्टि की, तो निराश होकर और मन-ही-मन कुछ गुस्सा होते हुए वह भीड़ फिर बिखर गई.

गांधी के जीवन से जुड़ी इस सच्ची घटना में दो बातें ध्यान देने की हैं. पहली यह कि उन्हें मारनेवालों की भीड़ भी अंग्रेजों की ही थी और उन्हें बचानेवाला भी अंग्रेज ही था.

दूसरी बात यह कि अंग्रेज पुलिस अधिकारी ने उन्मत्त भीड़ की हिंसक मानसिकता को पहचानते हुए एक मनोवैज्ञानिक की तरह गांधी को फांसी पर लटकाने वाला वह हिंसक गाना गवाया ताकि हिंसा का वह मवाद मनोरंजक तरीके से उनके दिलो-दिमाग से फूटकर बह निकले.

विडंबना देखिए कि इस घटना के लगभग 22 साल बाद 10 अप्रैल, 1919 को यह खबर फैलने के बाद कि गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया है, अहमदाबाद की एक हिंसक भीड़ ने पूरे शहर में दंगे और आगजनी के दौरान एक अंग्रेज को मार डाला और कई अंग्रेजों को गंभीर रूप से घायल और अपंग कर दिया. भीड़ के गुस्से का तात्कालिक कारण यह अफवाह भी थी कि गांधी के साथ-साथ अनुसूयाबेन को भी गिरफ्तार कर लिया गया है. गांधी ने जब यह सुना तो वे फफक कर रो पड़े थे. जिस गांधी ने अपने साथ डरबन में हुई भीड़ की हिंसा के बाद पुलिस में रिपोर्ट तक लिखाने से इनकार कर दिया था, उसी की गिरफ्तारी पर भारतीयों की हिंसक भीड़ ने किसी निर्दोष अंग्रेज को मार डाला था. इसलिए भीड़ की इस मानसिकता को गांधी ने एकदम तटस्थ तरीके से समझना शुरू किया.

गांधीजी ने सार्वजनिक प्रदर्शनों के दौरान भी स्वयंसेवकों की हल्लडबाजियां देखी थीं. उनकी सभाओं में अनियंत्रित भीड़ का हंगामा आम बात थी. इसलिए हारकर उन्होंने 8 सितंबर, 1920 को यंग इंडिया में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था-'लोकशाही बनाम भीड़शाही'.

उन्होंने लिखा कि आज भारत बड़ी तेजी से भीड़शाही की अवस्था से गुजर रहा है. दुर्भाग्यवश ऐसा भी हो सकता है कि हमें इस अवस्था से बहुत धीरे-धीरे छुटकारा मिले. लेकिन बुद्धिमानी इसी में है कि हम हरसंभव उपाय का सहारा लेकर इस अवस्था से जल्दी से जल्दी छुटकारा पा लें. □



बापू ने अपनी शहादत के केवल दो दिन पहले अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के मंत्री को अपनी 'आखिरी वसीयत' के नाम से एक कागज सौंपा था, जिसमें उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस की भूमिका की प्रशंसा तो की लेकिन साथ-साथ यह भी कहा था कि कांग्रेस की यह ऐतिहासिक भूमिका समाप्त हो चुकी है। इसीलिए उसको भंग कर देना चाहिए। लेकिन उसके विकल्प में उन्होंने सर्वोदय समाज की कल्पना रखी थी, जिसे बापू के सपनों के निर्माण के काम में लगना था। इसीलिए 'पांच लाख गांवों के लिए पांच लाख जिन्दा शहीद चाहिए' का उद्घोष किया गया था। यही कारण था कि गांधी परिवार के सभी वरिष्ठ लोगों ने विनोबाजी के नेतृत्व में 'सर्वोदय समाज' और 'सर्व सेवा संघ' नामक संस्थाओं का निर्माण किया था, जो दलगत राजनीति से अलग रहकर अहिंसक साधना के द्वारा एक नये समाज की रचना करेंगे। विनोबाजी ने भूदान ग्रामदान आंदोलन के द्वारा असंभव को संभव बनाने का प्रयास किया। जिस प्रकार बापू ने साम्प्रदायिक एकता के लिए अपना महा बलिदान किया। उसी प्रकार विनोबाजी ने भी कृषि प्रधान भारतीय समाज के लिए आवश्यक गोवंश की रक्षा के लिए अहिंसक रूप से आमरण उपवास कर अपना अपूर्व बलिदान दिया।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भी गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और देश में नागरिक स्वतंत्रता के निर्दलन के खिलाफ जो किया उसे हम सर्वोदय समाज के निर्माण के लिए अपने जीवन की पवित्र आहुति मानते हैं। लेकिन आज सर्वोदय समाज या सर्वोदय परिवार कुछ अपवादों को छोड़कर तेजस्विता हीन स्वयं सेवी संस्थाओं का रूप लेते जा रहे हैं और उसके छोटे-बड़े घरों में बनते जा रहे हैं। यह मैं अपने को उसमें सबसे हीन समझकर आत्मावलोकन भाव से लिख रहा हूँ कि आज हम इस पर विचार करें। गांधी की हत्या के दोषी का यदाकदा ही सही, समर्थन करने वाली संस्थाएं मिलकर आज सारे विरोधियों पर चुनाव में असाधारण विजय प्राप्त कर 'एक राष्ट्र और एक चुनाव' का दूसरा ब्रह्मास्त्र फेंकने की कोशिश कर रही हैं। विरोधी दलों के अंतहीन अविश्वास और अंतर्विरोध तो अपनी जगह हैं

लेकिन भारत का चक्रवर्ती बनने के लिए सत्ताधारी दल के अध्यक्ष ने अपनी पार्टी के दस लाख नये सदस्यों को भर्ती करने का संकल्प ले लिया है। आज संघ के कुछ जिम्मेदार और 'संत' कहलाने वाले लोग खुलकर गांधी वध की शव-परीक्षा कर रहे हैं और गांधीवादी कहलाने वाले हमलोग अभी अपने घरों की सुरक्षा में ही लगे हुए हैं, हालांकि हम सभी जानते हैं कि गांधी की सुरक्षा में अपनी ही नहीं, बल्कि पूरे देश और पूरी मानवता की सुरक्षा है।

मैं एक बहुत छोटा सुझाव देना चाहता हूँ, जो गांधी, विनोबा और जयप्रकाश—तीनों के जीवन में शांति सेना के रूप में परिलक्षित होता है। यह काल की इस महारात्रि में एक छोटे से दीपक के समान है। सत्य की विजय तो होगी है, लेकिन शांति की साधना अनिवार्य है। शांति सेना के अनेक रूप हो सकते हैं— तरुण शांति सेना, महिला शांति सेना और शांति सेना आदि। लेकिन आज के घने अंधकार में हमें व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर समाज की ओर अभिमुख होना होगा, जिसे हम 'संगठन' भी कह सकते हैं। 'संघे शक्ति कलियुगे' गांधीजी ने संघ शक्ति के द्वारा ही स्वराज्य का अभिक्रम दिखाया था। संगठन के लिए हमें पूरे समाज को संगठित करना ही होगा। लेकिन हमें मुख्य रूप से युवा शक्ति और स्त्री शक्ति पर जोर देना होगा।

युवाओं में अपार शक्ति होती है क्योंकि वे प्रकृति से निःस्वार्थ, निर्दोष और जोखिम उठाने वाले होते हैं। प्रह्लाद, ध्रुव, नचिकेता आदि सभी युवा शक्ति के ही रूप हैं। स्वतंत्रता संग्राम में गांधीजी ने युवाओं को ही पूरी तरह से प्रशिक्षित किया था। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन सचमुच में युवा शक्ति का ही अद्भुत विस्फोट था। 1960 के दशक में समूचे विश्व में युवा शक्ति के जागरण से ही इंग्लैंड, फ्रांस, पूर्तगाल, मिश्र, इण्डोनेशिया, वर्मा, पाकिस्तान और बाद में 1974 में भारत में युवा शक्ति ने महान शक्तियों को झुका दिया था। भारत में तो लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व में युवा शक्ति ने ही सत्ता को अपदस्थ तक किया था और उसे संपूर्ण क्रांति के विचार से अभिमंत्रित भी किया था। जिस तरह से विनोबा जी ने शांति सेना के मुख्य नायक की प्रतीक हरी टोपी पहन ली थी, उसी प्रकार लोकनायक जयप्रकाश ने

भी तरुण शांति सेना के अध्यक्ष और संरक्षक होने के नाते केसरिया साफा गले में धारण किया था। उन्होंने जमशेदपुर, राउरकेला, भिलाई, भागलपुर आदि अनेक जगहों में बड़े से बड़े साम्प्रदायिक दंगों को शांत किया और युवकों में राष्ट्र निर्माण की चेतना जागृत की थी। आज देश में युवा शक्ति के सामने कोई आदर्श नहीं होने के कारण वे दिशाहीन हो रहे हैं। राष्ट्र निर्माण और शांतिमय समाज के सपने भी उनसे दूर हो रहे हैं। हिंसा, बलात्कार, डकैती आदि भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय जीवन में बढ़ता जा रहा है। सम्प्रदायवाद का जहर और जातिवाद का कहर समूचे समाज को विषाक्त कर रहा है और समाज में हिंसा तथा भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है। युवा शक्ति को नयी दिशा देने वाले विद्यालय, महाविद्यालय, हर गांव, टोले और कस्बे में होने, उसी तरह जरूरी हैं जिस तरह बिजली और पानी जरूरी है। आज भी अगर तरुण शांति सेना के नाम पर युवा प्रशिक्षण का काम शुरू हो जायेगा तो देश में शांति और चरित्र निर्माण का काम सफल हो सकता है। तरुण शांति सेना के साथ-साथ स्त्री शक्ति का भी संगठन आवश्यक है क्योंकि वे देश की आधी आबादी हैं और उनके हाथों में समाज की सृष्टि भी है। आचार्य राममूर्ति ने पूर्वोत्तर प्रांत और बिहार में महिला शांति सेना का आकर्षक प्रयोग किया था, जहां हजारों बहनों ने शांति सेना का संकल्प और प्रशिक्षण लिया था। आज समाज में जिस प्रकार स्त्रियों और छोटी-छोटी बच्चियों पर जघन्य अत्याचार हो रहे हैं, उसको भी जड़ से विदा करने के लिए महिला शांति सेना आवश्यक है। बापू ने नोआखाली में प्रयोग कर बता दिया था कि हिंसा के खिलाफ केवल महिलाएं जाकर भी शांति स्थापना कर सकती हैं।

अहिंसा भारतीय समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसकी एक ही शर्त है कि शांति सैनिक किसी दल विशेष से बंधा नहीं होगा। सत्य और अहिंसा को अपना अक्षुण्ण कवच और कुण्डल भी मानेगा। अहिंसा कायरता नहीं है, शांति कोई कमजोरी नहीं है, बल्कि ये सब वीरों का पुरुषार्थ है।

यदि गांधी को मानने वाले सभी व्यक्ति और संस्थाएं अपने यहां शांति सेना, तरुण शांति सेना और महिला शांति सेना की स्थापना कर उन्हें तीन से पांच दिनों का प्रशिक्षण दिला दें तो हम देश में एक नई हवा बना सकते हैं। □

गतिविधियां एवं समाचार

गांधी विचार पर आधारित कृतिशील युवा-प्रगतिशील

देश- शिविर : मुम्बई सर्वोदय मंडल व गांधी विचार मंच, भंडारा के संयुक्त तत्वावधान में 15 से 19 मई के दौरान, जि. प. जकातदार माध्यमिक व कनिष्ठ महाविद्यालय में युवा शिविर का आयोजन किया गया था, विभिन्न सामाजिक विषयों पर वैचारिक चर्चा, प्रश्नोत्तरी के साथ ही योगासन, खेलकूद भी शिविर के प्रमुख कार्यक्रम थे। युवाओं में सामाजिक भाव निर्माण के उद्देश्य से यह शिविर आयोजित किया गया। आज के संदर्भ में गांधी विचारों की प्रासंगिकता, कार्यकुशलता, खेती, स्त्री-पुरुष समानता, वर्तमान स्थिति में पानी की समस्या व वृक्ष संपदा जैसी वर्तमान समस्याओं पर शिविर में चर्चा व मार्गदर्शन किया गया।

भंडारा जेल के में कैदियों ने दी

गांधी शांति परीक्षा : मुम्बई सर्वोदय मंडल व गांधी विचार मंच, भंडारा के संयुक्त तत्वावधान में 18 मई 2019 को भंडारा जिला कारागृह में गांधी शांति परीक्षा का आयोजन किया गया। कुल 179 कैदियों ने इस परीक्षा में हिस्सा लिया। परीक्षा में बैठे सभी बंदियों को प्रमाण-पत्र देकर सम्मानित किया गया।

आपातकाल दिवस मनाया गया :

26 जून को जय प्रकाश स्मारक समिति के तत्वावधान में बोकारो कर्मचारी पंचायत के कार्यालय में आपातकाल दिवस के अवसर पर एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी की अध्यक्षता जयप्रकाश स्मारक समिति के अध्यक्ष अरूण किशोर ने किया एवं संचालन सचिव अदीप कुमार ने किया। गोष्ठी को सम्बोधित करने वाले प्रमुख लोगों में थे बोकारो कर्मचारी पंचायत के आर के वर्मा, समीति के मनोज भारती, महावीर कुमार, सुखदेव शर्मा, राजीव भूषण सहाय, पुण्यानन्द दास, विकास चन्द्र महाराज और सुजीत कुमार। सभी वक्ताओं ने कहा कि आज लोकतंत्र खतरे में हैं। एक तरह से अधोषित रूप से आपातकाल है। इससे लड़ने के लिए तैयार रहना होगा और जनता को सावधान करना होगा।

सर्वोदय जगत

संत कबीर जयंती मनायी

गयी : गांधी विचार परिषद द्वारा रायपुर छत्तीसगढ़ में संत कबीर जयंती समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि छत्तीसगढ़ विधानसभा के अध्यक्ष चरणदास महंत थे। समारोह को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा आदि सिद्धांतों पर चलने की प्रेरणा गांधी ने जिन महापुरुषों से ली, उनमें संत कबीर का नाम सर्वोपरि है। सरलता, विनम्रता, सहजता और निडरता के मूल्य अपने चरित्र में समाहित करके गांधी ने दुनियाभर को सत्य और अहिंसक संघर्ष का संदेश दिया। विधायक सत्यनारायण शर्मा ने कहा कि आज देश में बढ़ती साम्प्रदायिकता के वातावरण में कबीर साहेब की वाणी और विचार हमारे दिशा निर्देशक हैं। उनकी वाणी को जनजन तक पहुंचाया जाना चाहिए। राजर्षि रामसुन्दर दास ने भी कबीर के जीवन और उपदेशों पर प्रकाश डाला। विषय प्रवेश आचार्य बालचन्द्र कहवा ने कराया। समारोह का संचालन अजय तिवारी ने किया। इस अवसर पर कबीर सम्प्रदाय के अलावा अन्य सम्प्रदायों के प्रबुद्ध लोगों ने भी भागीदारी की।

—गौतम बंद्योपाध्याय

फैक्ट फाइंडिंग टीम तबरेज अंसारी के गांव पहुंची :

तबरेज अंसारी लिंगिंग केस के बाद विभिन्न सामाजिक संगठनों की ओर से एक फैक्ट फाइंडिंग टीम का गठन किया गया। इस टीम ने सबसे पहले तबरेज के गांव कदमडीहा जाकर उसके परिवार से मुलाकात की और गांव वालों से बात की। गांव में प्रशासनिक अमले की मौजूदगी में झारखंड राज्य अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष कमाल खान और जमैतुल उलमा हिन्द के लोग मीडिया से मुखातिब थे। परिवार से मिलकर लौटते हुए हमारी टीम घटनास्थल धतकीडीह गांव में भी रुकी। एक स्कूल को पुलिस पिकेट बनाकर राज्य पुलिस वहां कैम्प कर रही थी। टीम जब गांव की महिलाओं से बात कर रही थी, उस समय कुछ लड़के, जो दूसरे गांवों के थे, वहां आये। वे धार्मिक उन्माद बढ़ाने वाली बातें करने लगे। माहौल की नजाकत भांपते हुए हम वहां से निकलने की कोशिश में थे, तभी उन लड़कों ने हमारी टीम के सदस्यों को

धमकी देना शुरू किया। अफसोस की बात है कि पुलिस की मौजूदगी में वे लड़के इतने आक्रामक थे। पुलिस भी उनके साथ फोटोग्राफी करवा रही थी। माहौल में तनाव बढ़ता देखकर हमने वहां से हटना ही उचित समझा। प्रशासन को चाहिए कि बाहर से आकर गांवों में नफरत फैलाने वालों पर सतर्क नजर रखें।

वनाधिकार पर दो दिवसीय

सम्मेलन : भूमि अधिकार आंदोलन के तत्वावधान में 2 जुलाई को नई दिल्ली में भूमि और वनाधिकार के संदर्भ में राष्ट्रीय परामर्श सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस अवसर पर घोषणा की गयी कि 13 फरवरी 2019 को सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के बाद वनवासी आदिवासी समूहों के सामने उजड़ने का खतरा मंडरा रहा है। प्रतिरोध के बाद सुप्रीम कोर्ट ने इस फैसले का कार्यान्वयन 10 जुलाई तक टाल दिया था। वनाधिकार अधिनियम के मुताबिक वनवासी समूहों को उनके परम्परागत वन क्षेत्र की रिहाइश से बेदखल नहीं किया जा सकता, कार्यक्रम में इस बात पर जोर दिया गया कि सरकार में राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है। लगभग सभी राजनीतिक दलों ने अपने चुनाव घोषणा पत्रों में वनाधिकार अधिनियम 2006 द्वारा आदिवासियों को मिलने वाले संरक्षण के प्रावधानों को यथावत रखने का वचन दिया हुआ है। जब कि फिलहाल वनवासियों आदिवासियों को वन विभाग की तरफ से वनभूमि खाली करने की धमकियों और हिंसा का सामना करना पड़ रहा है। यह सरकार का आदिवासी विरोधी चेहरा है। भूमि अधिकार आंदोलन सरकार के इस कदम का विरोध करता है।

कार्यक्रम में तय किया गया कि 22 जुलाई को सरकार के इस कदम के विरोध में राष्ट्रीय विरोध प्रदर्शन किया जायेगा। सरकार से मांग की गयी कि वन संशोधन अधिनियम को वापस लेकर वनाधिकार अधिनियम 2006 को प्रभावशाली ढंग से लागू करें। 28 नवंबर को संसद मार्ग, नई दिल्ली में एक संयुक्त प्रतिरोध की घोषणा की गयी। कार्यक्रम में आदिवासी अधिकार मंच के जितेन्द्र चौधरी और हन्नन मुल्ला, भूमि अधिकार आंदोलन के प्रेम सिंह, रोमा, अशोक चौधरी, मधुरेश कुमार, श्वेता तथा अनिक वर्गीस आदि शामिल हुए।

—संजीव कुमार

हरिवंश राय बच्चन की कविताएं

गुण तो निःसंशय देश तुम्हारे गाएगा

तुम उठा लुकाठी खड़े हुए चौराहे पर

गुण तो निःसंशय देश तुम्हारे गाएगा,
तुम-सा सदियों के बाद कहीं फिर पाएगा,
पर जिन आदर्शों को लेकर तुम जिये-मरे,
कितना उनको
कल का भारत
अपनाएगा?

बाएँ था सागर औँ दाएँ था दावानल,
तुम चले बीच दोनों के, साधक, सम्हल-सम्हल,
तुम खड्गधार-सा पंथ प्रेम का छोड़ गए,
लेकिन उस पर
पाँवों को कौन
बढ़ाएगा?

जो पहन चुनौती पशुता को दी थी तुमने,
जो पहन दनुजता से कुश्ती ली थी तुमने,
तुम मानवता का महाकवच तो छोड़ गए,
लेकिन उसके
बोझे को कौन
उठाएगा?

शासन-सम्राट डरे जिसकी टंकारों से,
घबराई फिरकेवारी जिसके वारों से,
तुम सत्य-अहिंसा का अजगव तो छोड़ गए,
लेकिन उस पर
प्रत्यंचा कौन
चढ़ाएगा?



तुम उठा लुकाठी खड़े हुए चौराहे पर;
बोले,
वह साथ चले जो अपना दाहे घर;
तुमने था अपना पहले भस्मीभूत किया,
फिर ऐसा नेता
देश कभी क्या
पाएगा?

फिर तुमने अपने हाथों से ही अपना सर
कर अलग देह से रक्खा उसको धरती पर,
फिर,
उसके ऊपर तुमने अपना पाँव दिया
यह कठिन साधना देख कँपे धरती-अंबर;
है कोई जो
फिर ऐसी राह
बनाएगा?

इस कठिन पंथ पर चलना था आसान नहीं,
हम चले तुम्हारे साथ, कभी अभिमान नहीं,
था, बापू,
तुमने हमें गोद में उठा लिया,
यह आने वाला
दिन सबको
बतलाएगा।